॥ श्रीहरिः ॥

410 ▲

जीवनोपयोगी प्रवचन

स्वामी रामसुखदास

॥ श्रीहरिः ॥

नम्र निवेदन

परमश्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज गीताके मर्मज्ञ व्याख्याता तो हैं ही, इनके अन्य धार्मिक विषयोंपर दिये गये प्रवचन भी अत्यन्त समयोपयोगी एवं कल्याणकारी होते हैं। स्वामीजी महाराजकी भाषा अति सहज, सुलभ और मर्म-स्पर्शी है तथा विचार अनुभव-जन्य, सार-गर्भित और प्रेरणादायक होते हैं। सामान्य मनुष्योंके जीवनमें जो निराशा, संताप और निरर्थकता व्याप्त हो गयी है उसको दूर करके प्राणोंमें नयी चेतना, सार्थकता और सम्भावनाओंका संचार करनेके लिये स्वामीजी महाराजके प्रवचन अत्यन्त उपयोगी हैं।

प्रस्तुत पुस्तिकामें संगृहीत स्वामीजी महाराजके प्रवचन आध्यात्म, भक्ति एवं सेवा-मार्गके साधकोंके लिये दिशा-निर्देशन और पाथेयका काम करेंगे।—आवश्यकता है केवल इन विचारोंको जाननेकी, समझनेकी तथा तदनुसार आचरण करनेकी। आशा है पाठक-गण इन जीवनोपयोगी विचारोंसे स्वयं लाभ उठायेंगे तथा इनका अधिक-से-अधिक प्रसार करेंगे।

प्रकाशक

॥ श्रीहरिः ॥

मानव-जीवनका लक्ष्य

हम विचार करके देखते हैं तो स्पष्ट मालूम होता है कि मनुष्य ही परमात्मप्राप्तिका अधिकारी है। जैसे चारों आश्रमोंमें ब्रह्मचर्याश्रम केवल पढ़ाईके लिये है। इसी तरह चौरासी लाख योनियोंमें मनुष्य-शरीर ब्रह्मविद्याके लिये है। ब्रह्मविद्याकी प्राप्तिके लिये ही मनुष्य-शरीर है और जगह ऐसा मौका नहीं है, न योग्यता है, न कोई अवसर है; क्योंकि अन्य योनियोंमें ऐसा विवेक नहीं होता। देवताओंमें समझनेकी ताकत है, पर वहाँ भोग बहुत है। भोगी आदमी परमात्मामें नहीं लग सकता। यहाँ भी देखो, ज्यादा धनी आदमी सत्संगमें नहीं लगते और जो बहुत गरीब हैं, जिनके पास खाने-पीनेको नहीं है, वे भी सत्संगमें नहीं लगते हैं। उन्हें रोटी-कपड़ेकी चिन्ता रहती है। इसी तरह नरकोंके जीव बहुत दुःखी हैं। बेचारे उनको तो अवसर ही नहीं मिलता है। देवता लोग भोगी हैं, उनके पास बहुत सम्पत्ति है, वैभव है, पर वे परमात्मामें नहीं लगते, क्योंकि सुख-भोगमें लगे हुए हैं, वहीं उलझे हुए हैं। अतः एक मनुष्य ही ऐसा है जो परमात्माकी प्राप्तिमें लग सकता है। उसमें योग्यता है। भगवान्‌ने अधिकार दिया है इसलिये मनुष्य-शरीरकी महिमा बहुत ज्यादा है, देवताओंसे भी अधिक है।

शरीर तो देवताओंका हमारी अपेक्षा बहुत शुद्ध होता है। हमलोगोंका शरीर बड़ा गन्दा है। जैसे कोई सूअर मैलेसे भरा हुआ यदि हमारे पास आ जाता है तो उसको छूनेका मन नहीं

करता, दुर्गन्ध आती है। ऐसे ही हमलोगोंके शरीरसे देवताओंको दुर्गन्ध आती है। ऐसा दिव्य शरीर है उनका। हमारे शरीरमें पृथ्वी-तत्त्वकी प्रधानता है। देवताओंके शरीरमें तेजस्-तत्त्वकी प्रधानता है। परन्तु परमात्माकी प्राप्तिका अधिकार जितना मनुष्य-शरीर-वालोंको मिलता है, इतना उनको नहीं मिलता। इसलिये मनुष्य-शरीरकी बहुत महिमा है।

उत्तरकाण्डमें श्रीकाकभुशुण्डिजीसे गरुड़जी प्रश्न करते हैं कि सबसे उत्तम देह कौन-सी है ? तो कहते हैं—मनुष्य-शरीर सबसे उत्तम है, क्योंकि '**नर तन सम नहिं कवनिउ देही। जीव चराचर जाचत जेही ॥**' चर-अचर सब जीव इस मनुष्य-शरीरकी याचना करते हैं, माँग रखते हैं। ऐसा कहकर आगे कहा—

नरक स्वर्ग अपबर्ग निसेनी।
ग्यान बिराग भगति सुभ देनी ॥

(मानस ७। १२०। ५)

मनुष्य-देह नरक, स्वर्ग और अपवर्ग (मोक्ष)—ये तीन देनेवाली है। इसके सिवाय परमात्माका ज्ञान इस शरीरमें हो सकता है। संसारसे वैराग्य हो सकता है और भगवान्‌की श्रेष्ठ भक्ति इसमें हो सकती है। इस शरीरमें ये छः बातें बतायीं। मनुष्य-शरीर एक बड़ा जंक्शन है। यहाँसे चाहे जिस तरफ जा सकता है। ऐसी मनुष्य-शरीरकी महिमा है। इस महिमाको कहते हुए पहले ही नाम लिया—'**नरक स्वर्ग अपबर्ग निसेनी**' नरकोंमें जा सकते हैं—यह महिमा है कि निन्दा ! मनुष्य-शरीर ऐसा है, जिसमें नरक मिल सकते हैं—तो यह निन्दा हुई। इसमें तात्पर्य क्या निकला ? ऊँची-से-ऊँची और नीची-से-नीची चीज मिल सकती है इस मानव-शरीरसे। यह इसकी महिमा है।

वास्तवमें महिमा है शरीरके सदुपयोगकी। इसका उपयोग ठीक तरहसे किया जाय तो भगवान्‌की श्रेष्ठ भक्ति मिल जाय, मुक्ति मिल जाय, वैराग्य मिल जाय, सब कुछ मिल जाय। ऐसी कोई चीज नहीं जो मनुष्य-शरीरसे न मिल सके। गीतामें आया है—

यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः।

(६।२२)

जिस लाभकी प्राप्ति होनेके बाद कोई लाभ शेष न रहे। माननेमें भी नहीं आ सकता कि इससे बढ़कर कोई लाभ होता है और जिसमें स्थित होनेपर वह बड़े भारी दुःखसे भी विचलित नहीं किया जा सकता। किसी कारण शरीरके टुकड़े-टुकड़े किये जायँ तो टुकड़े करनेपर भी आनन्द रहे, शान्ति रहे, मस्ती रहे। दुःखसे वह विचलित नहीं हो सकता। उसके आनन्दमें कमी नहीं आ सकती।

तं विद्याद् दुःखसंयोगवियोगं योगसंज्ञितम्।

(गीता ६।२३)

इतना आनन्द होता है कि दुःख वहाँ रहता ही नहीं। ऐसी चीज प्राप्त हो सकती है मानव-शरीरसे। मनुष्य-शरीरकी ऐसी महिमा तत्त्व-प्राप्तिकी योग्यता होनेके कारणसे है। मनुष्य-शरीरको प्राप्त करके ऐसे ही तत्त्वकी प्राप्ति करनी चाहिये। उसे प्राप्त न करके झूठ, कपट, बेईमानी, विश्वासघात, पाप करके नरकोंकी तैयारी कर लें तो कितना महान् दुःख है।

यह खयाल करनेकी बात है कि मनुष्य-शरीर मिल गया। अब भाई अपनेको नरकोंमें नहीं जाना है। चौरासी लाख योनियोंमें नहीं जाना है। नीची योनिमें क्यों जायें ? चोरी करनेसे, हत्या करनेसे, व्यभिचार करनेसे, हिंसा करनेसे, अभक्ष्य-भक्षण

करनेसे, निषिद्ध कार्य करनेसे मनुष्य नरकोंमें जा सकता है। कितना सुन्दर अवसर भगवान्‌ने दिया है कि जिसे देवता भी प्राप्त नहीं कर सकते, ऐसा ऊँचा स्थान प्राप्त किया जा सकता है—इसी जीवनमें। प्राणोंके रहते-रहते बड़ा भारी लाभ लिया जा सकता है। बहुत शान्ति, बड़ी प्रसन्नता, बहुत आनन्द—इसमें प्राप्त हो जाता है। ऐसी प्राप्तिका अवसर है मानव-शरीरमें। इसलिये इसकी महिमा है। इसको प्राप्त करके भी जो नीचा काम करते हैं, वे बहुत बड़ी भूल करते हैं।

कोई बढ़िया चीज मिल जाय तो उसका लाभ लेना चाहिये। जैसे किसीको पारस मिल जाय तो उससे लोहेको छुआनेसे लोहा सोना बन जाय। अगर ऐसे पारससे कोई बैठा चटनी पीसता है तो वह पारस चटनी पीसनेके लिये थोड़े ही है। पारस पत्थरसे चटनी पीसना ही नहीं, कोई अपना सिर ही फोड़ ले तो पारस क्या करे ? इसी तरह मानव-शरीर मिला, इससे पाप, अन्याय, दुराचार करके नरकोंकी प्राप्ति कर लेना अपना सिर फोड़ना है। संसारके भोगोंमें लगना—यह चटनी पीसना है।

भोग कहाँ नहीं मिलेंगे ? सूअरके एक साथ दस-बारह बच्चे होते हैं। अब एक-दो बच्चे पैदा कर लिये तो क्या कर लिया ? कौन-सा बड़ा काम कर लिया ? धन कमा लिया तो कौन-सा बड़ा काम कर लिया ? साँपके पास बहुत धन होता है। धनके ऊपर साँप रहते हैं। धन तो उसके पास भी है। धन कमाया तो कौन-सी बड़ी बात हो गयी ? ऐश-आराममें सुख देखते हैं और कहते हैं कि इसमें सुख भोग लें। बम्बईमें मैंने कुत्ते देखे हैं, जिन्हें बड़े आरामसे रखा जाता है। बाहर जाते हैं तो मोटर और हवाई जहाजमें ले जाते हैं। मनुष्योंमें भी बहुत कमको ऐसा आराम

मिलता है, जो कुत्तेको मिलता है। भाग्यमें है तो कुत्तोंको भी मिल जायगा। कौन-सा काम बाकी रह जायगा, जिसके लिये मनुष्य-शरीर नष्ट किया जाय! भोगोंके भोगनेमें, संसारका सुख लेनेमें, धन कमानेमें, मनुष्य-शरीर बर्बाद कर देना कितनी बड़ी भूलकी बात है! झूठ, कपट, बेईमानी करके मनुष्य नरकोंकी तैयारी कर लेता है, यह महान् पतनकी बात है। कितना ऊँचा शरीर मिला है मनुष्यको! उस शरीरमें आकर ऐसा काम कर ले! अतः सावधान रहना चाहिये कि बड़े-से-बड़ा काम हमें करना है, बढ़िया-से-बढ़िया काम हमें करना है। यह काम दूसरी योनिमें नहीं हो सकता।

एक मनुष्य-शरीरमें किये हुए पापोंका चौरासी लाख योनियोंमें भोग होता है। सत्य, त्रेता, द्वापर, कलि—ये चारों युग बीत जाते हैं चौरासी लाख योनि और नरकोंके कुण्ड भोगते-भोगते, फिर भी मनुष्य-शरीरमें किया हुआ पाप बाकी पड़ा रहता है। बीचमें भगवान् कृपा करके मनुष्य-शरीर देते हैं। सञ्चित पाप और पड़े हुए हैं भोगनेपर भी सारे पाप समाप्त नहीं होते, इतने महान् पाप हैं, जो इस मनुष्य-शरीरमें बनते हैं। यह मनुष्य-शरीर है जिससे परमात्माकी प्राप्ति कर सकते हैं। अनन्त ब्रह्माण्ड जिसके फुरणामात्रसे रचित होते हैं, पण्डित होते हैं, वे परमात्मा तुम्हारी आज्ञा माननेके लिये तैयार हो जाते हैं। '**ताहि अहीर की छोहरियाँ छछिया भरि छाछ पै नाच नचावें।**' उन गोपियोंके हृदयमें भगवान्‌के प्रति प्रेम होनेके कारण वे कहती हैं—'लाला छाछ दूँगी, थोड़ा नाचो।' तो भगवान् नाचने लग जाते हैं। 'लाला बंसी बजाओ, छाछ पिलाऊँगी।' अब बोलो छाछके बदले वे परमात्मा नाचने और बंसी बजानेको तैयार! इतना ऊँचा पद इस

मनुष्य-शरीरसे मिल सकता है। इस शरीरकी प्राप्ति करके हम फिर कर लें नरकोंकी तैयारी—महान् दुःखोंकी तैयारी, कितनी बड़ी भारी गलती है! ऐसा मनुष्य-शरीर मिल जाय तो बड़े-से-बड़ा लाभ ले लेना चाहिये।

जैसे वृन्दावनमें आ गये हो तो भगवान्‌के दर्शन करो, जमुनाजीमें स्नान करो। वहाँके रहनेवालोंसे पूछो कि ज्यादा लाभकी बात कौन-सी है। ज्यादा पुण्यदायक, उद्धार करनेवाली चीज कौन-सी है। वृन्दावनमें आये हो तो वृन्दावनका आनन्द लो। अब वृन्दावनमें आकर नाटक, सिनेमा देखते हो। अरे भाई! यहाँ क्यों आये? बम्बई, कलकत्तामें बहुत बढ़िया सिनेमा है। यह तो तीर्थ-स्थल है। भगवान्‌के दर्शन करो। जहाँ कीर्तन होता हो, कथा होती हो—ऐसी जगह जाओ और विशेष लाभ लो। वृन्दावनमें आये हो ना? इसी तरह मानव-शरीरमें आये हो तो विशेष लाभ ले लो। पर यहाँ भी वही काम करते हो जो पशु-पक्षी करते हैं, वही खाना-पीना, वही बाल-बच्चे पैदा करना। यह तो भैया कुत्ते बन जाओ तो तैयार, सूअर बन जाओ, गधे बन जाओ तो तैयार, कौआ बन जाओ तो तैयार। ये चीजें कौन-सी बाकी रहेंगी। इन चीजोंके लिये आये हो क्या मनुष्य-शरीरमें? मनुष्य-शरीर क्यों खराब करते हो? यह शरीर क्यों प्राप्त किया? भगवान्‌ने कृपाकर शरीर दिया है तो इस शरीरसे होनेवाले वे लाभ लो, जो दूसरे शरीरमें हो नहीं सकते।

बड़ें भाग मानुष तनु पावा।
सुर दुर्लभ सब ग्रंथन्हि गावा॥

(मानस ७।४२।४)

मनुष्य-शरीर देवताओंको दुर्लभ है, ऐसा ग्रन्थोंमें कहा है।

ऐसा दुर्लभ शरीर, जिसको प्राप्त करके केवल परमात्मतत्त्वकी प्राप्ति करनी चाहिये। केवल परमात्मतत्त्वमें ही सच्चे हृदयसे एकदम लग जाना चाहिये। मौका है भाई! जैसे मनुष्य-शरीर दुर्लभ है, वैसे कलियुग भी दुर्लभ है। जैसा मौका कलियुगमें मिलता है, वैसा अन्य युगमें नहीं मिलता। ऐसे कलियुगमें मौका मिला। उस कलियुगको प्राप्त करके भोगोंमें लग गये अथवा पापोंमें लग गये, अन्यायमें लग गये। शास्त्रकी दृष्टिसे अन्याय, हम भी विचारसे देखें तो अन्याय, लौकिक दृष्टिसे अन्याय, लोग देख लें तो शर्म आये। ऐसे-ऐसे कामोंमें लग जाय मनुष्य-शरीर प्राप्त करके। कितनी हानिकी बात है! तो हम क्या करें।

आज दिनतक हुआ सो हुआ। गलती हुई तो हुई। आजसे दृढ़ निश्चय कर लो कि समय बरबाद नहीं करेंगे, पाप व अन्याय नहीं करेंगे। जल्दी-से-जल्दी तत्त्वकी प्राप्ति कैसे हो? कैसे उस तत्त्वका बोध हो? कैसे भगवान्‌के चरणोंमें प्रेम हो जाय? ऐसी लालसा लगाओ।

प्रश्न—क्या हमारा भी प्रेम हो सकता है? क्या इस शरीरसे कल्याण हो सकता है?

उत्तर—ध्यान देकर सुनें। इस शरीरसे ही कल्याण हो सकता है। कल्याण भी आप कर सकते हो। लखपति बन जाओ आपके हाथकी बात नहीं, मकान-इमारत हो जाय, आपके हाथकी बात नहीं। संसारमें यश, प्रतिष्ठा, मान, आदर, सत्कार हो जाय, आपके हाथकी बात नहीं है। परमात्मतत्त्वकी प्राप्ति करना हाथकी बात है। इसमें सब स्वतन्त्र हैं। मनुष्य मात्र इसमें स्वतन्त्र है, कोई परतन्त्र नहीं, क्योंकि बड़े भारी लाभके लिये मनुष्य-शरीर मिला है। परमात्मतत्त्वकी प्राप्तिके लिये ही मानव-शरीर मिला है। उसको प्राप्त करना खास काम

है। मनुष्य ध्यान नहीं देता है। रामायणमें आया है—

कबहुँक करि करुना नर देही।
देत ईस बिनु हेतु सनेही॥ (७।४३।३)

इस चौपाईपर आप थोड़ा ध्यान दें। भगवान् विशेष कृपा करके मानव-शरीर देते हैं। इसका अर्थ क्या हुआ? भगवान्‌ने इस जीवपर विश्वास किया कि इसको मनुष्य-शरीर दिया जाय, जिससे इसका दुःख मिट जाय, मेरी प्राप्ति हो जाय, इसका कल्याण हो जाय। इस भावनासे मानव-शरीर दिया विशेष कृपा करके। जब भगवान्‌की यह भावना है कि मेरी प्राप्ति कर ले तो थोड़ा-सा हम भी इधर ध्यान दें तो भगवान्‌का संकल्प सच्चा होनेहीवाला है, पर ध्यान नहीं देता मनुष्य। भगवान् कृपा करके मानव-शरीर देते हैं—इसका अर्थ यही है कि परमात्माकी प्राप्ति हो सकती है। भगवान्‌ने विश्वास किया। यदि यहाँ आकर जीव भगवान्‌की प्राप्ति नहीं करता है तो भगवान्‌के साथ विश्वासघात करता है। यहाँ आकर पाप, झूठ, कपट करता है तो बड़ा भारी नुकसान है।

निश्चय कर लो कि आजसे पाप नहीं करेंगे। अन्याय नहीं करेंगे और भगवत्तत्त्वकी प्राप्ति करेंगे। जैसे व्यापारी व्यापार खोजता है, इस तरह परमात्मतत्त्वकी प्राप्तिके लिये खोजमें लगना चाहिये। आपको कोई संत, महात्मा मिल जाय, कोई भगवत्प्राप्त पुरुष मिल जाय तो उनसे पूछो कि भगवान् कैसे मिलें? भगवान्‌के चरणोंमें प्रेम कैसे हो? जीवन्मुक्ति कैसे हो? इस बातकी लालसा जगाओ तो—

जेहि कें जेहि पर सत्य सनेहू।
सो तेहि मिलइ न कछु संदेहू॥ (मानस १।२५८।३)

नारायण! नारायण!! नारायण!!!

—★—

सत्संगकी महिमा

प्रथम भगति संतन्ह कर संगा।

(मानस ३।३४।४)

संत-महात्माओंका संग पहली भक्ति है।

भक्ति सुतंत्र सकल सुख खानी।
बिनु सतसंग न पावहिं प्रानी॥

(मानस ७।४४।३)

भक्ति स्वतन्त्र है, सम्पूर्ण सुखोंकी खान है। कहते हैं—

सतसंगत मुद मंगल मूला।
सोइ फल सिधि सब साधन फूला॥

(मानस १।२।४)

सम्पूर्ण मङ्गलकी मूल सत्संगति है। वृक्षमें पहिले मूल होता है और अन्तिम लक्ष्य फल होता है। सत्संगति मूल भी है और फल भी है। जितने अन्य साधन हैं सब फूल-पत्ती हैं जो मूल और फलके बीचमें रहनेवाली चीजें हैं। सत्संगतिमें ही सब साधन आ जाते हैं। इसलिये सत्संगकी बड़ी भारी महिमा है। सुन्दरदासजी महाराज कहते हैं:—

संत समागम करिये भाई।
यामें बैठो सब मिल आई॥

संत-समागम करना चाहिये। यह नौकाकी तरह है, इसमें बैठकर पार हो जायेंगे। सत्संग चन्दनकी तरह पवित्र बना दे और

पारसरूपी सत्संगसे कंचन-जैसा हो जाय। ऐसा सत्संग है। आगे सुन्दरदासजी महाराज फिर कहते हैं—

''और उपाय नहीं तिरने का सुन्दर काढहि राम दुहाई।''

रामजीकी सौगन्ध दे दी कि कल्याणका और कोई उपाय नहीं है। यह अचूक उपाय है। इसलिये सत्संगमें जाकर बैठ जायें तो निहाल हो जायें। सत्का संग करो। जहाँ भगवान्‌की चर्चा हो, सत्-चर्चा हो, सत्-चिन्तन हो, सत्कर्म हो और सत्संग हो तो सत्‌के साथ सम्बन्ध हो जाय। बस, इससे निहाल हो जाय जीव।

जीवको जितने दुःख आते हैं, सब असत्‌के संगसे आते हैं और अविनाशीका संग करते ही स्वतः निहाल हो जाता है, क्योंकि वह भगवान्‌का अंश है।

ईस्वर अंस जीव अबिनासी।
चेतन अमल सहज सुखरासी॥

(मानस ७। ११६। १)

अतः सत्संगसे, सत्का प्रेम होनेसे सत् प्राप्त हो जाता है। सत्संग मिल जाय, परमात्माका संग मिल जाय तो निहाल हो जाय। सत्से जहाँ सम्बन्ध होता है, वह सत्संग है। भगवान्‌के साथ जो संग है, वह सत्संग है। असली संग होता है, असत्‌के त्यागसे। वैसे असत्‌के द्वारा भी सत्संगमें सहायता होती है, जैसे सत्-चर्चा करते हैं तो बिना वाणीसे कैसे करें ? सत्कर्म करते हैं तो बिना बाहरी क्रियासे सत्कर्म कैसे करें ? सत्-चिन्तन करते हैं तो मनके बिना कैसे करें ? पर सत्संगमें दूसरा नहीं हो, अपने-आपहीमें मिल जाय, तल्लीन हो जाय। सत्संग, सत्-चिन्तन, सत्कर्म, सत्-चर्चा और सद्ग्रन्थोंके अवलोकन—इन सबका उद्देश्य सत्संग है। सत्की प्राप्तिके लिये असत्‌को दूर कर दे तो

सत्संगका उद्देश्य पूरा हो जाता है।

"सनमुख होइ जीव मोहि जबहीं।" असत्से विमुख होनेपर सत्का संग हो जाता है। राग, द्वेष, ईर्ष्या आदिका जो कूड़ा-करकट भीतरमें भरा है, यह सत्संग नहीं होने देता। ऐसा मालूम होता है कि मनुष्य चाहे तो इनका त्याग कर सकता है; परन्तु फिर भी इसे कठिनता मालूम देती है; कबतक ? जबतक पक्का विचार न हो जाय। पक्का विचार करनेपर यह कठिनता नहीं रहती। चाहे जो हो, हमें तो इधर ही चलना है, पक्का विचार हो जाय। फिर सुगमता हो जाती है।

मनमें ईर्ष्या, राग, द्वेष आदि दोष भरे हुए हैं। बहुत-से भाई-बहिन इस बातको जानते ही नहीं हैं और जो जानते हैं वे विशेष खयाल नहीं करते। कई खयाल करके छोड़ना भी चाहते हैं, लेकिन इसमें सुख लेते रहते हैं। इस कारण राग, द्वेष, ईर्ष्या आदि छूटते नहीं, क्योंकि असत्का संग रहता है।

सत्का संग (सत्संग) मिल जाय तो आदमी निहाल हो जाय। जहाँ सत्का संग हुआ वह निहाल हुआ। कारण क्या है ? परमात्मा सत् हैं। बीचमें जितना-जितना असत्का सम्बन्ध मान रखा है, वही बाधा है।

जैसे कल्पवृक्षके नीचे जानेसे सब काम सिद्ध होते हैं, वैसे ही सत्संग करनेसे सब काम सिद्ध होते हैं। अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष—चारों पुरुषार्थ सिद्ध होते हैं। तो क्या सत्संगसे धन मिल जाता है ? कहते हैं कि सत्संगसे बड़ा विलक्षण धन मिलता है। रुपया मिलनेसे तृष्णा जागृत होती है, और सत्संग करनेसे तृष्णा मिट जाती है। रुपयोंकी जरूरत ही नहीं रहती।

गंगा पापं शशी तापं दैन्यं कल्पतरुर्हरेत्।
पापं तापं तथा दैन्यं सद्यः साधुसमागमः॥

गङ्गाजीमें स्नान करनेसे पाप दूर हो जाते हैं; पूर्णिमाके दिन चन्द्रमा पूरा उदय होता है, उस दिन तपत (गरमी) शान्त हो जाती है; कल्पवृक्षके नीचे बैठनेसे दरिद्रता दूर हो जाती है। पर सत्संगसे तीनों बातें होती हैं—पाप नष्ट होते हैं, भीतरी ताप मिट जाता है और संसारकी दरिद्रता दूर हो जाती है।

चाह गई चिन्ता मिटी, मनुआ बेपरवाह।
जिनको कछू न चाहिए, सो साहन पतिशाह॥

सत्संगसे हृदयकी चाहना भी मिट जाती है। यह बात एकदम सच्ची है, सत्संग करनेवाले भाई-बहिन तो इस बातको जानते हैं। बिलकुल ठीक बात है, सत्संगसे हृदयकी जलन दूर हो जाती है।

मनुष्य चाहता है कि ऐसे हो जाय, वैसे हो जाय तो ऐसी बात आती है कि—

मना मनोरथ छोड़ दे तेरा किया न होय।
पानी में घी नीपजे तो सूखी खाय न कोय॥
यद्भावि न तद्भावि भावि चेन्न तदन्यथा।
इति चिन्ताविषघ्नोऽयमगदः किं न पीयते॥

जो नहीं होना है, वह नहीं होगा और जो होनेवाला है, वह टल नहीं सकता, होकर रहेगा फिर ऐसा क्यों आग्रह कि यह होना चाहिये, यह नहीं होना चाहिये। बस, हाँ-में-हाँ मिला दें। सत्संग भी एक कला है। सत्संगमें कला मिलती है, दुःखोंसे पार होने-की। जैसे समुद्रमें डूबनेवालेको तैरनेकी कला हाथ लग जाय, ऐसे सत्संगमें युक्ति मिल जाय तो निहाल हो जाय।

****

सत्संगमें उत्तम विचार मिलते हैं। ज्ञानमार्गमें तो यहाँतक बताया है—

धन किस लिए है चाहता, तू आप मालामाल है।

सिक्के सभी जिससे बनें, तू वह महा टकसाल है॥

उस धनके आगे तू इस धनको क्यों चाहता है ? धन-ही-धन है। परमात्मा-ही-परमात्मा है; लबालब भरा हुआ है। उस धनसे धन्य हो जाय। परमात्माका, सत्‌का दर्शन—यह सत्संग करा देता है।

सत्संगमें व्यापार एक ही चलता है, भगवान्‌की बात। उसीको कहना, सुनना, समझना, विचार करना, चिन्तन करना। भगवान् जिसपर कृपा करते हैं, उसको सत्संग देते हैं। सत्संग दे दिया तो समझो भगवान्‌के खजानेकी बढ़िया चीज मिल गयी। जो भगवान्‌के प्यारे होते हैं, वे भगवान्‌के भीतर रहते हैं। यह हृदयका धन है। माता-पिता जिस बालकपर ज्यादा स्नेह रखते हैं, उसको अपनी पूँजी बता देते हैं कि बेटा, देखो यह धन है। ऐसे ही भगवान् जब बहुत कृपा करते हैं तो अपने खजानेकी चीज (पूँजी) संत-महात्माओंको देते हैं—लो बेटा, यह धन हमारे पास है।

सत्संग मिल जाय तो समझना चाहिये कि हमारा उद्धार करनेकी भगवान्‌के मनमें विशेषतासे आ गयी; नहीं तो सत्संग क्यों दिया ? हम तो ऐसे ही जन्मते-मरते रहते, यह अडंगा क्यों लगाया ? तो यह कल्याण करनेके लिये लगाया है। जिसे सत्संग मिल गया तो उसे तो यह समझना चाहिये कि भगवान्‌ने उसे निमन्त्रण दे दिया कि आ जाओ। ठाकुरजी बुलाते हैं, अपने तो प्रेमसे सत्संग करो, भजन-स्मरण करो, जप करो। सत्संग करनेमें सब स्वतन्त्र हैं। सत् परमात्मा सब जगह मौजूद है। वह परमात्मा

मेरा है और मैं उसका हूँ—ऐसा मानकर सत्संग करे तो वह निहाल हो जाय।

सत्संग कल्पद्रुम है। सत्संग अनन्त जन्मोंके पापोंको नष्ट-भ्रष्ट कर देता है। जहाँ सत्‌की तरफ गया कि असत् नष्ट हुआ। असत् तो बेचारा नष्ट ही होता है। जीवित रहता ही नहीं। इसने पकड़ लिया असत्‌को। अगर यह सत्‌की तरफ जायगा तो असत् तो खत्म होगा ही। सत्संग अज्ञानरूपी अन्धकारको दूर कर देता है। महान् परमानन्द-पदवीको दे देता है। यह परमानन्द-पदवी दान करता है। कितनी विलक्षण बात है ! सत्संग क्या नहीं करता ? सत्संग सब कुछ करता है। ***"प्रसूते सद्बुद्धिम्।"*** सत्संग श्रेष्ठ बुद्धि पैदा करता है। बुद्धि शुद्ध हो जाती है।

गोस्वामीजी महाराज लिखते हैं:—

मज्जन फल पेखिअ ततकाला।
काक होहिं पिक बकउ मराला॥

(मानस १।२।१)

साधु-समाजरूपी प्रयागमें डुबकी लगानेसे तत्काल फल मिलता है। कौआ कोयल बन जाता है, बगुला हंस बन जाता है अर्थात् सत्संग करनेसे रंग नहीं बदलता, ढंग बदल जाता है। जो वाणी कौआकी तरह है, वह कोयलकी तरह हो जाती है। जो बगुला होता है वह हंसकी तरह नीर-क्षीर-विवेक करने लगता है। सत्संगसे आचरण और विवेक तत्काल बदल जाते हैं। सत्संग मिल जाय तो ये बदल जाते हैं अगर नहीं बदले तो या तो सत्संग नहीं मिला या सत्संगमें आप नहीं गये। दोनोंके मिलनेसे ही काम बनता है। पारस लोहेको सोना बना दे, अगर मिले तब तो, पर बीचमें पत्ता रख दिया तो फिर कुछ नहीं बननेका।

भगवान्‌के प्रति व संत-महात्माओंके प्रति निष्काम भावसे प्रेम करो। भगवान् मीठे लगें, प्यारे लगें, अच्छे लगें। क्यों लगें? क्योंकि वे मेरे हैं। बच्चोंको माँ अच्छी लगती है। क्यों लगती है? क्योंकि मेरी माँ है। ऐसे ही भगवान्‌के साथ अपनापन रहे, तो यह सत्संग होता है। भगवान् हमारे हैं, हम भगवान्‌के हैं। कैसी बढ़िया बात है।

एक सज्जन मिले। वे कहते थे कि तीर्थोंका माहात्म्य बहुत है। गङ्गाजी अच्छी हैं, यमुनाजी अच्छी हैं, प्रयागराज बड़ा अच्छा है—ऐसा लोग कहते तो हैं, परन्तु किराया तो देते नहीं। किराया दें तो वहाँ जायें। सत्संगमें बढ़िया-बढ़िया बात सुनते हैं और परमात्माके धाम जानेके लिये किराया भी मिलता है। सत्संगमें ज्ञान मिलता है, प्रेम मिलता है, भगवान्‌की भक्ति मिलती है। भगवान् शबरीसे कहते हैं, "**प्रथम भगति संतन्ह कर संगा।**" दण्डक वन था, उसमें वृक्ष आदि सब सूखे हुए थे। उसमें शबरी रहती थी। यहाँ शबरीको संतसंग मिल गया, यह भगवान्‌की कृपा है। मतंग ऋषि थे, बड़े वृद्ध संत, कृपाकी मूर्ति। उन्होंने शबरीको आश्वासन दिया था कि बेटा, तू चिन्ता मत कर, यहाँ रह जा। ऋषि-मुनियोंने इसका बड़ा विरोध किया, पर संतकी कृपा बड़ी विचित्र होती है।

धनी आदमी राजी हो जाय तो धन दे दे, अपनी कुछ चीज दे दे, परन्तु संत कृपा करें तो भगवान्‌को दे दें। उनके पास भगवान्‌रूपी धन होता है। वे सामान्य धनके धनी नहीं होते हैं, असली धनके धनी होते हैं, मालामाल होते हैं और वह माल ऐसा विलक्षण है कि ***"दानेन वर्धते नित्यम्"***, ज्यों-ज्यों देते हैं, त्यों-त्यों बढ़ता है। ऐसा अपूर्व धन है। अतः खुला खर्च करते

****

है। खुला भंडार पड़ा हुआ है, अपार, असीम, अनन्त है, जिसका कोई अन्त ही नहीं है। भगवान्‌का ऐसा अनन्त अपार खजाना है। फिर भी मनुष्य मुफ्तमें दुःख पा रहे हैं। इसलिये सज्जनो, बड़े आश्चर्यकी बात है !

पानीमें मीन पियासी, मोहि देखत आवै हाँसी।
जल बिच मीन, मीन बिच जल है निश दिन रहत पियासी ॥

भगवान्‌में सब संसार है और सबके भीतर भगवान् हैं। उन भगवान्‌से विमुख होते हैं "**सनमुख होइ जीव मोहि जबहीं**" तो संत-महात्मा जीवको परमात्माके सम्मुख कर देते हैं। अरे भाई ! परमात्मा तो सम्मुख है ही, हमारा प्यारा माता-पिता, भाई-बन्धु, कुटुम्बी, सम्बन्धी—वह सब तरहसे अपना है। वे प्रभु हमारे हैं। संत ऐसी बात बता दें और हम वह बात सुनकर पकड़ लें तो बड़ा भारी लाभ होता है। स्वयं हम पकड़ें और किसी संत-महात्माके कहनेसे हृदयसे पकड़ें तो उसमें बड़ा अन्तर होता है।

संत-महात्मा जो कहते हैं, उनके वचनोंका आदर करो। जमानत भी ली जाती है तो इज्जतदार आदमीकी। हर एककी जमानत नहीं होती है। ऐसे ही भगवान्‌के दरबारमें संत-महात्माओंकी और भक्तोंकी बड़ी इज्जत है, तभी तो गोस्वामीजीने कह दिया—

सत्य बचन आधीनता पर तिय मातु समान।
इतने पै हरि ना मिले तो तुलसीदास जमान ॥

तुलसीदासजीकी जमानत है। संत लोग जमानत दे देते हैं और वह भगवान्‌के यहाँ चलती है। संतोंके यहाँ परमात्माका बड़ा खजाना रहता है। मुफ्तमें धन मिलता है, मुफ्तमें कमाया हुआ, तैयार किया हुआ, सत्संगसे यह सब मिल सकता है।

प्रश्न—कुछ लोगोंको सत्संग करना सुहाता ही नहीं। इसका क्या कारण है ?

उत्तर—पापीका यह स्वभाव है कि उसे सत्संग सुहाता नहीं।

पापवंत कर सहज सुभाऊ।
भजनु मोर तेहि भाव न काऊ॥

(मानस ५।४३।२)

तुलसी पूरब पाप ते, हरि चर्चा न सुहाय।
जैसे ज्वर के जोर ते, भूख बिदा ह्वै जाय॥

मनुष्यको बुखार आ जाता है तो भूख नहीं लगती, अन्न अच्छा नहीं लगता। अन्न अच्छा नहीं लगता तो इसका अर्थ है उसको रोग है। जब पित्तका जोर होता है तो मिश्री भी कड़वी लगती है। मिश्री कड़वी नहीं है, उसकी जीभ कड़वी है। इसी तरह जिसे भगवान्‌की चर्चा सुहाती नहीं तो इसका कारण है कि उसे कोई बड़ा रोग हो गया। कथामें रुचि नहीं होती तो स्पष्ट है कि अन्तःकरण बहुत मैला है, मामूली मैला नहीं, ज्यादा मात्रामें मैला है।

ज्यादा मैला होनेपर क्या उसको सत्संग दूर नहीं कर सकता ?

सत्संग सब मैलोंको दूर कर सकता है; पर मनुष्य पासमें ही नहीं आता। बुखारका जोर होनेसे अन्न अच्छा नहीं लगता और मिश्री कड़वी लगती है। कैसे करें ? मिश्री कड़वी लगे तो भी खाते रहो। मिश्रीमें खुदमें ताकत है कि वह पित्तको शान्त कर देगी और मीठी लगने लगेगी। ऐसे ही भजनमें रुचि नहीं हो तो भी भजन करते रहो। भजन करते-करते ज्यों-ज्यों पाप नष्ट होते हैं, त्यों-त्यों उसमें मिठास आने लगता है। सत्संगमें ऐसे लोग

आये हैं जो रुचि नहीं रखते थे। पर किसीके कहनेसे आये तो फिर विशेषतासे आने लग गये।

प्रश्न—सत्संग प्रतिदिन क्यों किया जाय ?

उत्तर—सत्संगकी महिमा क्या कहें ? सत्संग तो रोजाना करनेका है, नित्यप्रति करनेका है। यह त्यागनेका है ही नहीं। सत्संगसे सांसारिक बाधाएँ मिट जाती हैं। कोई बीमार होता है, कोई लड़ाई करता है, किसीको कोई और बाधा लग जाती है—ये सब तरह-तरहके साँप हैं जो काटते हैं। उनसे जहर चढ़ जाता है तो वह घबरा जाता है। वह अगर सत्संगमें जाकर सत्संगरूपी बूटी सूँघ ले तो स्वस्थ हो जाय, प्रसन्न हो जाय। चित्तकी चिन्ता दूर हो जाय। फिर जाकर संसारका काम करे। काम करते-करते उसमें उलझ जाते हैं तो जहर चढ़ जाता है। वह जहर सत्संगमें जानेसे ठीक हो जाता है। इस तरह करते हुए हमारे जो शत्रु हैं—काम, क्रोध, राग, द्वेष आदि वे सब-के-सब मर जाते हैं। जैसे अन्न, जल आवश्यक है, साँस लेना आवश्यक है, उसी तरह सत्संग भी प्रतिदिन करना जरूरी है। वह तो रोजकी खुराक है। सत्संगसे बहुत शान्ति मिलती है। बहुत-सी मानसिक बीमारियाँ दूर होती हैं। सत्संग सूर्यकी तरह होता है जो अन्तःकरणके अन्धकारको दूर कर देता है। उससे पाप दूर हो जाते हैं, बिना पूछे शंकाएँ दूर हो जाती हैं। तरह-तरहकी जो हृदयमें उलझनें हैं, वे सुलझ जाती हैं। सत्संग जहाँ हो जाय, मिल जाय तो समझना चाहिये कि भगवान्‌ने विशेष कृपा की। भगवान् शंकरने दो ही बात माँगी—'**पद सरोज अनपायनी भगति**', और '**सदा सत्संग।**'

प्रश्न—सत्संगसे मुफ्तमें लाभ मिलता है सो कैसे ?

उत्तर—सत्संगसे जो लाभ होता है वह साधनसे नहीं होता। साधन करके जो परमात्मतत्त्वको प्राप्त करता है, वह कमाकर धनी बनता है और सत्संगसे वह गोद चला जाता है, कमाया हुआ धन मिल जाता है। संतोंका कमाया हुआ धन मिलता है। गोद जानेवालेको क्या जोर आवे ? आज कंगाल और कल लखपति। वह तो जा बैठा गोदमें। कमाये हुए धनका मालिक हो जाता है। सत्संगके द्वारा ऐसी चीजें मिलती हैं, जो वर्षोंतक साधन करनेसे भी नहीं मिलतीं। अतः सत्संग मिल जाय तो अवश्य करना चाहिये। मुफ्तमें कल्याण होता है, मुफ्तमें।

प्रश्न—नाम-जपसे अधिक सत्संगकी महिमा कही—इसका क्या कारण है ?

उत्तर—सत्संग करनेवाला नाम जपे बिना रह नहीं सकता। नाम-जप स्वाभाविक ही होगा।

प्रश्न—सत्संग न मिले तो क्या करें ?

उत्तर—भगवान्‌से प्रार्थना करें हे नाथ ! हे नाथ ! करके पुकारो। भगवान् सर्वसमर्थ हैं। उनको पुकारते जाओ वे सत्संगकी व्यवस्था बैठा देंगे। इसके अलावा सत्-शास्त्रोंका अध्ययन करें।

प्रश्न—मनुष्यका सुधार करनेमें सबसे बढ़िया उपाय क्या है ? आप अपने अनुभवके आधारपर बतावें।

उत्तर—मेरेको जितना लाभ सत्संगसे हुआ है, उतना किसी साधनसे नहीं हुआ। अच्छे संगमें रहनेसे बड़ा भारी लाभ होता है, जिसकी कोई सीमा नहीं। सत्संग मत छोड़ो, जिस सत्संगसे अपने हृदयकी गाँठ खुलती है, आत्मसाक्षात्कार होता

है, प्रकाश मिलता है, ऐसा सत्संग छोड़ो मत। सब कुछ मिल जाता है पर "**संत समागम दुर्लभ भाई**"।

प्रश्न—सत्संगसे प्रकाश कैसे मिलता है ?

उत्तर—सत्संगतिका अर्थ होता है प्रकाश। जैसे हम कहीं जाते हैं और रात्रिका समय हो तो मोटरका प्रकाश सामने ही रहता है। ऐसा नहीं होता कि प्रकाश पीछे रह जाय और मोटर आगे निकल जाय। प्रकाश आगे ही रहेगा और वह प्रकाश चलनेके लिये रास्ता बताता है। ऐसे ही सत्संगतिसे मनुष्यको प्रकाश मिलता है कि हम कैसे चलें ? सत्संगकी बातें केवल याद कर लें, पुस्तकोंमें पढ़ लें, लोगोंसे कह दें और हम उसके अनुसार चलें नहीं तो प्रकाशको तेज करनेमात्रसे रास्ता नहीं कटता। लाइट कम भी है, परन्तु जहाँतक रास्ता दिखता है, वहाँतक हम चलते जायें तो उससे आगे दिखने ही लगेगा—यह नियम है। परन्तु एक जगह खड़े-खड़े कितनी ही तेज लाइट कर लें गन्तव्य स्थान नहीं दिखेगा। ऐसे ही सत्संगतिके द्वारा हमें जो प्रकाश मिल जाय उसके अनुसार अपना जीवन बनावें, उसके अनुसार चलें। तभी वह प्रकाश सार्थक होता है। जीवन न भी बनावें तो भी यह प्रकाश निरर्थक नहीं जाता; क्योंकि जो सत्य चीज है, वह प्रकट हो ही जाती है। सत्यकी विजय होती है, झूठकी विजय नहीं होती। परन्तु यदि सत्यका आदर करें तो बहुत जल्दी और विशेष लाभ ले सकते हैं। तो सत्संगकी बातें अपने आचरणमें लाना चाहिये।

नारायण ! नारायण !! नारायण !!!

★

दुर्गुणोंका त्याग

आप खूब ध्यान दें, मनुष्यसे दोष उस समय होता है जब वह किसीसे कुछ चाहता है। अपना अभिमान होता है और सुख चाहता है, संयोगजन्य सुखकी अभिलाषा भीतर होती है। अर्जुनने पूछा कि मनुष्य पाप करना नहीं चाहता, फिर पाप क्यों हो जाता है ? भगवान्‌ने यही उत्तर दिया है कि उसके मनमें सुख-भोगकी, और संग्रहकी कामना है, चाहना है। जबतक यह चाहना रहेगी, तबतक पाप होता ही रहेगा। सावधान होनेपर भी फिर गफलत हो जायगी।

इसके मिटनेका उपाय क्या है ? असली उपाय भीतरका प्रायश्चित्त है, पश्चात्ताप हो जाय, जलन पैदा हो जाय। जिस पाप-कर्मसे जितना सुख हुआ, उस सुखकी अपेक्षा पश्चात्ताप अधिक हो जाय और यह प्रतिज्ञा कर ले कि कभी किसीको धोखा नहीं दूँगा, ऐसी भूल कभी नहीं करूँगा, ऐसा पक्का विचार कर ले और उसपर डटा रहे तो पहले किया हुआ पाप नष्ट हो जायगा। परन्तु यदि विचार भी करता रहता है फिर भी वैसा ही पाप करता रहता है तो वह नष्ट नहीं होता। नया-नया पाप होता रहता है, फिर पतन होता ही चला जायगा। पक्का पश्चात्ताप हो जाय कि अब ऐसा काम नहीं करेंगे, इसपर डटा रहेगा तो उसका अन्तःकरण शुद्ध हो जायगा, निर्मल हो जायगा। जितना पश्चात्ताप अधिक होगा और जितना अपना विचार पक्का होगा, उतनी जल्दी अन्तःकरण शुद्ध होगा। ये दो चीजें बहुत दामी हैं, बड़ी श्रेष्ठ हैं, अन्तःकरणको

निर्मल करनेवाली और पापोंका नाश करनेवाली हैं।

एक बातका खयाल रखना है कि मनुष्य स्वयं परमात्माका अंश है, स्वयं दोषी नहीं है, यह संयोगजन्य सुख लेनेसे ही दोषी बनता है। अपना अभिमान और कामना—ये दो महान् पतन करनेवाले हैं और इनसे लाभ कोई होनेवाला नहीं है। तो खूब समझनेकी बात है। हमारे इस बातका विचार आता है मनमें कि भाई लोग ध्यान नहीं देते। संसारसे सुखकी कामना और लोभ रहता है कि मेरे लाभ हो जायगा, इतना ले लूँ, इतना रख लूँ, इतना मार लूँ इससे मेरे सुख हो जायगा—ऐसा भाव है, इसके समान धोखा देनेवाला कोई वैरी है ही नहीं। इतना इससे धोखा खाता है। सज्जनो ! आपके जँचे-न-जँचे; पर यह बात मेरी विचारी हुई है कि लाभ कोई-सा ही नहीं है और नुकसान बहुत भारी है। परन्तु मनुष्यको उसमें लाभ दिखता है और नुकसान नहीं दिखता—यह अवस्था है।

करहिं मोह बस नर अघ नाना।
स्वारथ रत परलोक नसाना॥

(मानस ७।४०।२)

स्वार्थमें रत रहकर नाना प्रकारके पाप करता है। मूढ़ता भरी है भीतरसे, वहम रहता है कि मैं ठीक कर रहा हूँ, पर कर रहा है अपने-आप अपनी हत्या, अपना पतन और अपना नुकसान।

सज्जनो ! कृपा करके आजसे अन्याय छोड़ दो, पाप मत करो। अगर शान्ति, सुख चाहते हो तो दूसरोंका हक लेनेका विचार मत रखो नहीं तो कोई बचा नहीं सकेगा, महान् कष्टमें जाना ही पड़ेगा; क्योंकि पापोंको पकड़ लिया आपने, पापके

बापको भी पकड़ लिया।

एक कहानी आती है। एक अच्छे पण्डितजी कथा कहते थे, लोगोंको सुनाते, पढ़ाते थे। एक दिन पण्डितजीकी स्त्रीने कह दिया कि महाराज! पापका बाप कौन है? तो पण्डितजी बता नहीं सके। बड़ा दुःख हुआ कि मैं इतना पढ़ा-लिखा पण्डित हूँ और यह तो कुछ नहीं जानती, पर मुझे इसके प्रश्नका भी उत्तर आया नहीं। तो पश्चात्ताप हुआ और उठकर चल दिये कि तेरे प्रश्नका उत्तर दिये बिना मैं तेरे हाथकी रोटी नहीं खाऊँगा। स्त्रीने बहुत अनुनय-विनय किया; पर पण्डितजीने कहा कि नहीं। स्त्रीको दुःख हुआ, पर विचार किया कि सुधार हो जाय तो अच्छी बात है, इस कारण चुपचाप रही।

वह जाने लगा, बीचमें एक वेश्याका घर था। वह पण्डितजीको जानती थी। उसे इस बातका आश्चर्य आया कि आज पण्डितजी उदास होकर कैसे जा रहे हैं। सामने जाकर उसने पूछा कि महाराज! आज आप कहाँ जा रहे हैं, क्या बात है? तो पण्डितजी बोले कि मुझे बड़ा दुःख है। "किस बातका"? वेश्याने पूछा। उत्तर दिया कि मेरी स्त्रीने प्रश्न किया और उत्तर मुझे आया नहीं। इसलिये काशी जाता हूँ वहाँ पढ़ाई करूँगा। पण्डितोंसे पूछूँगा। फिर आऊँगा घरपर। वेश्याने पूछा कि बात क्या है? पण्डितजीने उत्तर दिया कि मेरी स्त्रीने पूछा कि पापका बाप कौन है? मैं बता नहीं सका। वह बोली—यह बात तो मैं बता दूँगी। आप वहाँ क्यों जाते हैं? यह तो बड़ी सीधी बात है, मैं बता दूँगी। पण्डितजी बोले कि बहुत अच्छी बात है, हमें तो बात मिलनी चाहिये। पण्डितजी रुक गये।

अमावस्याके पहले दिन सौ रुपये भेंट कर दिये और वह बोली कि मेरी प्रार्थना है कि मेरे घरपर आप भोजन कर लें, भोजन चाहे आप स्वयं बना लें। पण्डितजीने विचार किया कि इसमें दोष क्या है ? स्वीकार कर लिया निमन्त्रण। दूसरे दिन पण्डितजी चले गये। उसने भोजनकी सारी सामग्री तैयार कर ली। चौका देकर, रसोई साफ करके सामग्री सामने रख दी और वेश्याने सौ रुपये और पण्डितजीके सामने रखे और कहा कि महाराज ! आप पक्की रसोई तो दूसरेके हाथकी पाते ही हैं, मैं बना दूँ अच्छी तरहसे। इतनी मुझपर कृपा हो जाय। पण्डितजीने सोचा कि पक्की रसोई पानेमें क्या है ? पक्की रसोई पाते तो हैं ही, चलो इसके हाथकी पा लेंगे। वेश्याने खीर, मालपुआ, पूरी, साग आदि सब ठीक तरहसे बना लिये।

रसोई बनकर तैयार हो गयी तो कहा—पण्डितजी महाराज ! अब पावो। उनके सामने रसोई परोस दी। सामने लाकर सौ रुपये रख दिये और बोली कि एक कृपा और हो जाय, मेरे हाथसे ग्रास ले लो। पण्डितजीने सोचा इसमें हर्ज क्या है, इसके हाथकी बनायी हुई रसोई अपने न लेकर, उसके हाथसे ले लें, इसमें फर्क क्या है ? पडिण्तजीने स्वीकार कर लिया। ग्रास बनाकर मुँहमें देने लगी तो जैसे ही पण्डितजीने मुँह खोला तो पण्डितजीके मुँहपर जोरका थप्पड़ मारा और बोली कि अभीतक होश नहीं आया, खबरदार मेरा एक भी दाना खाया तो। मैं आपका धर्म-भ्रष्ट नहीं करना चाहती। आपके शंका थी न कि पापका बाप कौन है ? शास्त्रोंमें वेश्याका अन्न कितना निषिद्ध लिखा है। आपने पढ़ा है ? ''पढ़ा तो है''—पण्डितजी बोले। तो आप कैसे तैयार हो

गये खानेके लिये ? और वह भी मेरा बनाया हुआ और मेरे ही हाथसे। कारण क्या है ? आपको पता नहीं लगा, यह जो लोभ है न, यही पापका बाप है।

गीताजीने (२।४४ में) दो आसक्तियाँ बतायीं—***"भोगैश्वर्यप्रसक्तानाम्"*** सुखभोग और संग्रह। इनमें एक-एकसे आदमी अन्धा हो जाता है। अगर दोनों हो जाय, फिर तो उसका कहना ही क्या है। पूछा गया कि मनुष्य ऐसा क्यों करता है ? वह लोभमें आकर करता है। सुख-आराम मिले और धन मिल जाय, ऐसी चाहना होनेपर फिर चाहे जो पाप करवा लो। दवाईके नामसे चाहे जो चीज खिला दो और व्यापारके नामसे चाहे जो काम करवा लो। सुना है कि सनातन-धर्मके आदमियोंने मांस सप्लाई-तक किया मिलट्रीके लिये। अब व्यापार है, राम ! राम ! राम ! भीतर लोभ है कि रुपया आ जाय तो उसके लिये क्या-क्या अनर्थ करते हैं लोग ! रोंगटे खड़े हो जायँ अगर विचार करके देखें तो ऐसे अन्याय करते हैं। और है क्या ? यह धन कितने दिन ठहरेगा ? आप कितने दिन जीवेंगे ? परन्तु पापकी गठरी तो बाँध ही लेता है। सन्तलोग कहते हैं कि तू थोड़ा-सा डर तो सही।

पाप कर्मसे डर रे मेरा मनवा रे।

मन ! तू पाप-कर्मसे डर। तू व्यर्थमें अनर्थ करता है, लोगोंका माल मारता है और भोग भोगता है। निषिद्ध रीतिसे सुख भोगता है। थोड़ा-सा विचार कर, मनुष्य-शरीर मिला है तेरेको। अच्छी-अच्छी बातें सुनने, कहनेका मौका मिलता है, फिर भी तू ऐसा करता है। भाइयो, सज्जनो ! दुनियाका उद्धार हो सकता है, परन्तु ऐसे आदमीका उद्धार नहीं होगा जो महान् अपराध करता

है फिर पूछते हैं कि वैराग्य क्यों नहीं ठहरता ? वैराग्य कैसे ठहरे ? जब राग ऊपर चढ़ा हुआ है, भोग-इच्छा भीतर पड़ी हुई है। वैराग्य कैसे टिके ? वहाँ वैराग्य नहीं टिकेगा। विरुद्ध अवस्था है यह। रागके वशीभूत होकर निषिद्ध आचरणसे भी बचता नहीं। भाई ! अगर आप दुर्गतिसे बचना चाहते हैं, नरकोंसे बचना चाहते हैं, चौरासी लाख योनियोंसे बचना चाहते हैं, महान्-महान् कष्टोंसे बचना चाहते हैं, तो आजसे, अभीसे विचार कर लें कि दूसरोंका हक नहीं लेंगे। किसी रीतिसे ही लिया हो, वह ब्याज-सहित उसको पूरा-का-पूरा दे दें। दूसरेका हक मारनेका भाव भीतरसे सदाके लिये उठा दो। जीवन निर्मल बना लो सज्जनो ! तब तो ये पारमार्थिक बातें समझमें आने लग जायेंगी। आचरणमें आने लग जायेंगी। परन्तु जबतक नीयत खराब होगी, तबतक ये बातें समझमें नहीं आ सकतीं। याद कर लो, दूसरोंको सुना दो, परन्तु जबतक पाप विराजमान है भीतर, तबतक कुछ नहीं होगा। इसलिये कम-से-कम, सबसे पहले यह निश्चय कर लो कि अन्यायपूर्वक भोग नहीं भोगेंगे और अन्यायपूर्वक संग्रह नहीं करेंगे। निषिद्ध कर्मोंका त्याग सबसे पहला त्याग है।

'त्यागसे भगवत्प्राप्ति' पूज्य श्रीसेठजीका लेख है उसमें सबसे पहला त्याग निषिद्ध कर्मोंका त्याग है—झूठ, कपट, जालसाजी, बेईमानी, अभक्ष्य-भक्षण आदि-आदि ये निषिद्ध आचरण शरीरसे, मनसे, कभी नहीं करना चाहिये। यह पारमार्थिक मार्गमें कलंक है। क्या पहले कलंकका भी त्याग नहीं कर सकते ? हृदयसे त्याग कर दो। भीतरसे त्यागका भाव मुख्य है इतना होनेपर भी किसी कारणसे कभी कोई पाप या दोष हो जाय तो

जलन पैदा हो जायगी यह इसकी पहिचान है। अशान्ति हो जायगी। उस जलनमें यह ताकत है कि आगे दुबारा पाप नहीं होगा। पक्का विचार कर लें कि अब नहीं करेंगे। हे नाथ ! ऐसा बल दो, ऐसी शक्ति दो कि आपकी आज्ञाके विरुद्ध कोई काम न करें। तो भगवान् मदद करते हैं, धर्म मदद करता है, शास्त्र मदद करते हैं, सन्त-महात्मा मदद करते हैं। सच्चे हृदयसे परमात्माकी तरफ चलनेवालेपर दुनियामात्र कृपा करती है और मदद करती है। सभी मदद करते हैं, उसकी सहायता करते हैं।

एक सन्त मिले थे, अन्धे थे। उन्होंने कहा कि मुझे वैराग्य हुआ और बाहर जंगलमें रहता था। ठंडक आ गयी तो एक भक्तने बढ़िया कम्बल दे दी। वह एक कम्बल ही मेरे पास बढ़िया थी और कोई चीज बढ़िया नहीं। रात्रिमें एकान्त था तो कुछ आदमी पासमें आये, शब्द सुनायी दिया, उनकी वाणी सुनी। मनमें विचार किया कि न जाने डाकू हैं कि चोर हैं, न जाने कौन हैं ? मेरे पास यह कम्बल है इसे देखकर ये ले जायेंगे तो पहले अपने ही इनसे बात कर लो। तो उनसे बोले कि भाई ! बोलो कौन हो, क्या बात है ? उन्होंने आकर देखा कि ये तो बाबाजी हैं। ऐसा देखकर बोले कि महाराज ! आप सन्त हैं, इसलिये हम आपसे सच्ची बात कह देते हैं कि हम चोरी करने जा रहे हैं, हमारा पेशा चोरी करनेका नहीं है, हम तो गृहस्थ हैं। अपना कमाकर खानेवाले हैं परन्तु राज्यका लगान बहुत बढ़ गया है, वह दे नहीं सकते, इसलिये हम चोरी करने जा रहे हैं। सन्तने कहा कि भैया, चोरी करना अच्छा नहीं है। उन्होंने कहा कि हम भी अच्छा नहीं समझते; परन्तु करें क्या ? इतना लगान कहाँसे दें ? हमारे पास

है नहीं। उनसे इतनी बात की, पर बाबाकी कम्बल नहीं ली। आदमी लोभमें ऐसा करता है, लोभमें चोरी करे, दूसरोंको दुःख दे, धन मार ले, कितने पापकी बात है, कितने अन्यायकी बात है। यह एक विलक्षण बात है कि निर्धन होनेपर भी, आफत आनेपर भी पाप न करे। दुःख पा ले, पर पाप न करे, अन्याय न करे।

सिबि दधीच हरिचंद नरेसा।
सहे धरम हित कोटि कलेसा॥

(मानस २। ९४। २)

धर्मके लिये करोड़ों कष्ट सह लिये, पर अपने धर्मसे विचलित नहीं हुए।

धीरज धर्म मित्र अरु नारी।
आपद काल परिखिअहिं चारी॥

(मानस ३। ४। ४)

इनकी परीक्षा आपत्तिके समय होती है। मनुष्यके लिये बहुत ही आवश्यक है कि धैर्य खोवे नहीं। जोरसे हवा आती है कभी-कभी, तो बड़े-बड़े वृक्ष टूट जाते हैं। पर उस हवामें भी जो ठीक रह जाय तो फिर वह मौजसे रहता है कोई खतरा नहीं। इसी तरह काम, क्रोध, लोभ आदिकी हवाका झोंका मिट जाता है तो फिर ठीक हो जाता है। थोड़ा-सा धैर्य रखें। कैसी भी आफत आ जाय, पाप नहीं करेंगे, अन्याय नहीं करेंगे, शास्त्र-निषिद्ध आचरण नहीं करेंगे, भूखे मरेंगे तो मर जायेंगे और क्या होगा, बताओ ? पासमें कुछ नहीं है तो भूखे मर जायेंगे, इसके सिवा दण्ड होगा नहीं। पाप करोगे तो नरकोंमें जाना पड़ेगा और चौरासी लाख योनियोंमें भटकना पड़ेगा यह बात स्वीकार कर ले तो उससे कोई

शक्ति कभी पाप करवा नहीं सकेगी।

शास्त्रोंमें ब्रह्मा, विष्णु, महेश तीनोंके अस्त्रोंका वर्णन आता है। ब्रह्माजीका ब्रह्मास्त्र है, भगवान् विष्णुका नारायणास्त्र है और शिवजीका पाशुपतास्त्र है। ये मन्त्रोंके प्रयोगसे चलते हैं। ब्रह्मास्त्र जिसपर छोड़ दिया जाता है तो उसे खत्म कर देता है। ब्रह्मास्त्रका उपाय है उसका उपसंहार करना। मन्त्रोंसे उसको उलटा लेनेसे वह आगे दखल नहीं देता। नारायण-अस्त्र छूट जाता है तो वह भी खातमा कर देता है। उसका उपाय है कि शरण हो जाय, लम्बे पड़ जाय। शरण ले लेनेसे वह नारायण-अस्त्र नहीं मारता है। परन्तु पाशुपतास्त्र छोड़नेपर चाहे कुछ भी करो, खत्म ही करेगा। भले ही शरण हो जाओ, भले ही कुछ भी करो। वह तो संहार करेगा ही। पाशुपतास्त्र बहुत कम आदमियोंके पास है। महाभारतका युद्ध हुआ, उसमें भगवान् शंकरका दिया हुआ पाशुपतास्त्र अर्जुनके पास था, भगवान् शङ्करने कह दिया कि तुम्हें चलाना नहीं पड़ेगा। यह तुम्हारे पास पड़ा-पड़ा विजय कर देगा, चलानेकी जरूरत नहीं, चला दोगे तो संसारमें प्रलय हो जायगा। इसलिये चलाना नहीं।

सज्जनो! ऐसे आपको पापसे बचनेके लिये पाशुपतास्त्र बताता हूँ, आप कृपा करके सुनें और उसे धारण कर लें, बड़ी भारी कृपा मानूँगा। वह क्या कि मर जायेंगे पर पाप नहीं करेंगे, अन्याय नहीं करेंगे! नहीं करेंगे! नहीं करेंगे! ऐसा आपका केवल विचार हो जाय। ऐसा करनेसे आप बिना अन्नके मर जाओगे यह बात होगी नहीं। अन्नके बिना मरना पड़े तो भी परवाह नहीं, पर पाप-अन्याय नहीं करेंगे। यह है अस्त्रका

चलाना। यह चलाना नहीं पड़ेगा। पक्का विचार पड़ा-पड़ा आपकी विजय कर देगा। हमें मौत स्वीकार है, आफत स्वीकार है, पर पाप स्वीकार नहीं है, ऐसा पक्का विचार होनेपर आपसे कोई पाप करवा नहीं सकता, अन्याय करवा नहीं सकता। किसीकी ताकत नहीं कि अन्याय करवा ले। साथमें रखिये भगवान्‌का भरोसा। याद करते रहो कि नाथ! यह बात तो मेरी है, पर बल आपका है। इस बातके निभानेमें बल आपका होगा, तब होगा काम। अर्जुनको भगवान्‌ने कहा कि तू निमित्तमात्र बन जा।

निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन्।

(गीता ११। ३३)

निमित्तमात्र तो मैं बन जाता हूँ, परन्तु यह काम कर लेना ठीक तरहसे यह मेरी ताकतके बाहरकी बात है। हे नाथ! आप निभाओ। "**उस सेवककी लाज, प्रतिज्ञा राखे साईं**", "**आछी करे सौ रामजी**" रामजी जो करते हैं अच्छा करते हैं, भगवान्‌के द्वारा अपना अच्छा-ही-अच्छा होता है, रक्षा होती है, सहायता होती है, फायदा होता है, नुकसान होता ही नहीं।

"**भूंडी बनै सौ आपकी**"—भूंडी (बुरी) तो आपकी है, खुदकी है, खराब खुद करता है। अगर खुद तैयार नहीं होता तो कोई नहीं करवा सकता। कानूनने ऐसा कर दिया, लोगोंने ऐसा कर दिया, कुसंगने ऐसा कर दिया, वायु-मण्डल ऐसा ही आ गया, हमारा भाग्य ऐसा ही था, संग अच्छा नहीं मिला, गुरु नहीं मिले आदि-आदि बातें सब बहानेबाजी हैं और कुछ नहीं। कोई भी किञ्चिन्मात्र भी आपका बिगाड़ कर नहीं सकता, जबतक आप बिगाड़के लिये तैयार न हो जायें और उसमें भी अपना विचार

पक्का रखें और सहारा भगवान्‌का हो। भीतरसे पुकारता रहे प्रभुको कि हे नाथ ! बिना आपकी कृपाके हमारेसे नहीं होगा यह। ऐसे कृपाका भरोसा हो तो उसका पतन कभी हो नहीं सकता।

भगवान्‌के चरणोंकी शरण लेनेसे भगवान् कहते हैं—

अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः।

(गीता १८। ६६)

सब पापोंसे मैं मुक्त कर दूँगा। तू चिन्ता मत कर। ***''मामेकं शरणं व्रज''*** शर्त यह है। शरण यदि धनकी लेगा; झूठ, कपट, बेईमानीका आश्रय रखेगा, तो भाई, मेरे हाथकी बात नहीं। मनुष्य क्या करता है ? झूठ, कपट, बेईमानीका सहारा लेता है।

आज कहा जाय कि पाप मत करो। तो लोग कहते हैं कि महाराज ! आजकलके जमानेमें यह नहीं चल सकता। यह आपकी बात पुराने ढंगकी है, पुराने जमानेकी। इस जमानेमें ऐसा नहीं चल सकता। ऐसा करें, तो भूखों मर जायेंगे। जी नहीं सकते। आज सचाईके साथ कैसे करें ? लाख रुपया कमाते हैं तो लगभग आधा टैक्सका देना पड़ता है। हमें एक भाईने कहा है कि अब बताओ क्या कमावें, क्या खावें ? इस जमानेमें मनुष्य सचाईसे काम नहीं कर सकता। हम कहते हैं कि सरकार कृपा कर रही है कि लोभके वशीभूत होकर ज्यादा संग्रह मत करो। क्रियात्मक उपदेश दे रही है। साधारण खर्चा करो, साधारण कमाओ और खाओ। उससे पाप कोई नहीं करवा सकता। कुछ रुपये कमानेतक छूट है न टैक्सकी ? उतनेके भीतर-भीतर कमाओ। कहते हैं खर्चा कहाँसे लावें, छोरीका ब्याह कैसे करें ? मुश्किल हो जाती है, सभ्यता है। सभ्यताको तिलाञ्जलि दे दो,

पानी दे दो, पानीमें खड़े होकर। हमें वह सभ्यता नहीं रखनी। हमारी बेइज्जती हो जाय, उससे डरेंगे नहीं। पुण्य करते हुए, शुभ काम करते हुए, धर्मके ऊपर चलते हुए अगर लोग निन्दा करें, तो करें।

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः।

(गीता १६।२१)

अपना पतन करनेवाले काम, क्रोध और लोभ—ये तीन प्रकारके नरकोंके दरवाजे हैं। इनमें प्रविष्ट हो गया, वह तो नरकोंमें ही जायगा। यदि भगवान्‌को याद करे कि अब ऐसा नहीं करेंगे तो नहीं जायगा। जब कभी सुधर जाय उमरभरमें, जब कभी चेत हो जाय और विचार पक्का हो जाय कि पाप कभी नहीं करूँगा, तो पूरा प्रायश्चित्त हो जायगा। भगवान्‌की कृपासे उसको बल भी मिल जायगा, धर्म मिल जायगा और वह सन्त बन जायगा। ऊपरसे वह भाई हो चाहे बहिन हो, गृहस्थ हो या कुछ भी हो, भगवान् तो भीतरका भाव देखते हैं ***''भावग्राही जनार्दनः''*** वे भाव-भोक्ता हैं। भाव जिसका निर्मल हो गया, वह तो निर्मल हो ही गया। केवल बाहरसे निर्मल होनेसे, अच्छा बननेमें देरी लगती है, पर यह भाव हो जाय कि हम पाप नहीं करेंगे, इतनेमें बहुत जल्दी शुद्ध हो जाता है।

''व्यवसायात्मिका बुद्धिरेका'' निश्चय कर लिया कि पारमार्थिक मार्गमें ही चलना है, कुछ भी हो जाय। ***''अपि चेत्सुदुराचारः''***—पापी-से-पापी हो तो उसे भी ***''साधुरेव स मन्तव्यः''***—साधु ही मानना चाहिये, क्योंकि ***''सम्यग्व्यवसितो हि सः''***—उसने पक्का निश्चय कर लिया। उस भावके अनुसार

वह पवित्र हो जाता है।

रहति न प्रभु चित चूक किए की।
करत सुरति सय बार हिए की।

(मानस १।२८।३)

पहले दोष बन गये, उन बातोंको भगवान् याद नहीं करते। जिसका भाव अच्छा है और इधर चलना चाहता है, भगवान् उसे सौ बार याद करते हैं कहीं उसे भूल न जाऊँ। ऐसे प्रभुके रहते हुए भय किस बातका ? सच्चे हृदयसे पापका त्याग कर दो। अभी तो लोभमें आकर पाप कर बैठते हैं; परन्तु आगे दशा क्या होगी ? इसका कुछ विचार किया है ? धन यहीं रहेगा, सम्पत्ति यहीं रहेगी, पर आप जावोगे। उम्रभरमें खर्च कर सकोगे नहीं। पापसे कमाया हुआ धन खर्च नहीं किया जायगा, बाकी बचेगा और पाप किया हुआ कर्म पीछे नहीं रहेगा, साथ चलेगा और महान् दण्ड भोगना पड़ेगा। समझदार आदमीको तो जल्दी चेत कर लेना चाहिये, इसलिये केवल विचार हो जाय कि अब पाप नहीं करेंगे, अन्याय नहीं करेंगे।

नारायण ! नारायण !! नारायण !!!

संसारमें रहनेकी विद्या

वास्तवमें अभिमान और ममताका त्याग कठिन है। परन्तु एक बात आपको बतायी जाती है, भाई-बहिन अपने-अपने घरोंमें उसका अनुष्ठान करें, उसके अनुसार जीवन बनायें, तो बहुत सुगमतासे अभिमान और ममताका त्याग हो सकता है। घरोंमें प्रायः दो बातोंको लेकर लड़ाई होती है। काम-धन्धा तो तुम करो और चीज-वस्तु मैं लूँ। आराम, आदर, सत्कार, सब कुछ मेरेको मिले। काम-धन्धा और खर्च तुम करो। इन बातोंको लेकर खटपट चलती है। अगर इनको उलट दिया जाय अर्थात् काम-धन्धा मैं करूँ, आराम आप करो। आदर-सत्कार, मान-प्रशंसा—ये लेनेकी नहीं देनेकी हैं, तो दूसरोंका आदर करें, मान दें, आराम दें, सत्कार करें, उनकी आज्ञा पालन करें, उनको सुख पहुँचायें, ऐसे आपसमें किया जाय तो प्रेम बढ़ता है।

मनुष्यका स्वभाव है कि वह अपने मनकी बात पूरी करना चाहता है और अपने मनकी होनेसे राजी होता है। धनकी, मानकी, बड़ाईकी, जीनेकी कामना होती है। परन्तु इन कामनाओंमें मूल कामना यह है कि मेरे मनकी बात हो जाय। यह बात बढ़िया नहीं है। अपने मनकी बातका आग्रह छोड़कर औरोंके मनकी बात करता चला जाय तो निहाल हो जाय। केवल दो बातोंका खयाल करना है कि उनकी बात न्याययुक्त हो और अपनी सामर्थ्यमें हो। इसका एक सरल उपाय है। यह निश्चय कर लें कि हमें संसारसे लेना नहीं है—संसारकी सेवा करनी है। क्यों

करनी है ? क्योंकि पहले लिया है इसलिये अब देना है। संसारको देना है, संसारसे लेना नहीं है।

एक मार्मिक बात बतायें आप ध्यान देकर सुनें। मानव-शरीर परमात्माकी प्राप्तिके लिये मिला है। संसारमें रहनेकी एक रीति है। उस रीतिको हम धारण करें तो परमात्माकी प्राप्ति बहुत सुगमतासे हो जाय। हरेक काम करनेकी एक विद्या होती है, यदि उसके अनुसार काम करते हैं तो वह काम पूरा हो जाता है। संसारमें रहनेकी भी एक विद्या है तो उस विद्याको भी जानना चाहिये। उस विद्याको काममें लें तो बड़ी सुगमतासे संसारमें रहेंगे और संसारको पार कर जायेंगे। वह विद्या क्या है ? जिसने जिसके साथ जो सम्बन्ध मान रखा है, उसके अनुसार बड़ी तत्परतासे अपने कर्त्तव्यका पालन करे और उससे अपनी कोई भी इच्छा न रखे, कामना न रखे, वासना न रखे। अपने लेना नहीं है, देना है। यह शरीर है, संसारसे सुख लेनेके लिये नहीं मिला है।

एहि तन कर फल बिषय न भाई।

शरीरका फल तो सेवा करना है। माताके लिये पुत्र बनो तो सपूत बनो। माँकी सेवा करनी है। माताके पास जो रुपये हैं, गहने-कपड़े हैं, तो यही कहो कि माँ, जो तुम्हारे पास है उसे हमारी बहिनको दे दो। छोटे भाई या बड़े भाईको दे दो। मेरे ऊपर तो एक ही कृपा करो कि सेवा मेरेसे ले लो। माँ-बापकी सेवासे आदमी उऋण नहीं हो सकता। उनका जितना भी ऋण हमारे ऊपर है, उसे हम चुका नहीं सकते। ऋणको अदा नहीं कर सकते। कोई उपाय नहीं है। तो क्या है ? सेवा करके उनकी प्रसन्नता ले लो। प्रसन्नता लेनेसे वह ऋण माफ हो जाता है। माँने

****

जितना कष्ट सहा है, बालक उतनी माँकी सेवा नहीं कर सकता। सब कुछ माँने दिया। कोई कहे कि मैं मेरे चमड़ेकी जूती बनाकर माँको पहना दूँ। कोई उनसे पूछे। यह चमड़ा भी बाजारसे लाये हो क्या ? यह तो माँका ही है। इसपर तू अधिकार क्या करता है ? माँसे मिला है। आज हम बड़ी-बड़ी बातें बनाते हैं। लोगोंमें विद्वान्, सज्जन कहलाते हैं, यह शरीर मिला किससे है ? माँसे मिला है। माँसे पालन हुआ है।

आप कितने भी विद्वान् हो जायँ। बचपनमें बैठना नहीं आता था, माँने बैठना सिखाया। चलना सिखाया, उँगली पकड़कर। भोजन करना नहीं आता था, माँने बिठाकर मुखमें ग्रास दिया। भोजन करना सिखाया। यह दशा थी बहिनोंकी और भाइयोंकी भी। उस अवस्थामें माँने पालन किया और बड़े-बड़े कष्ट सहे। खेलमें इधर-उधर जाते, तोड़-फोड़ करते, वृक्षोंमें उलझते, बिच्छूको भी पकड़नेको दौड़ते, आगमें हाथ डालना चाहते। माँने रक्षा की। टट्टी-पेशाब करते उसमें ही लकीरें खीचने लगते। अब ऐसा देखकर मन खराब होता है। उस समय होश नहीं था कुछ भी, यह सब माँने ज्ञान कराया। बड़ी विलक्षणतासे पालन किया।

कभी-कभी भाई लोग अभिमानमें आकर कह देते हैं कि क्या बड़ी बात है ! उनसे मैं कहता हूँ कि बच्चेको दो दिन गोदमें रखकर देखो। माँमें मातृत्व-शक्ति है तब हमारा पालन हुआ। इसलिये जितनी अपनी सामर्थ्य हो माँ-बापकी सेवा करो। जो नहीं जानते, कृपा कर उन्हें समझाओ कि बड़ोंका आदर करो। जो माँ-बापका आदर नहीं करते, उनका भगवान् भी आदर नहीं करते। कोई उनका विश्वास नहीं करते, क्योंकि जो माँ-बापका नहीं है, वह किसका होगा ? माँ-बापकी सेवा करनेसे भगवान् राजी

****

होते हैं। आज्ञा पालन करनेसे सिद्धि प्राप्त होती है। अर्थात् परमात्माकी प्राप्ति होती है। इस कारण भाई-बहिनोंको आज्ञा पालन करना चाहिये। आज्ञा पालनसे क्या होगा ? उनकी सेवा होगी और हम निरहंकार हो जायेंगे। चीज-वस्तुओंसे उनकी सेवा करनेसे निर्मम हो जायेंगे। जितनी-जितनी चीजोंको सेवामें लगा देंगे, उतनी ही उनसे ममता दूर हो जायगी और जितना परिश्रम करोगे उतना अपना अहंकार नष्ट हो जायगा। आराम-बुद्धि और अपनेमें बड़प्पनका अहंकार पतन करनेवाले हैं। संसारकी सेवा करते-करते अभिमानको सुगमतासे दूर कर सकते हो। ऐसे ही समान उम्रवालोंकी सेवा करो। छोटी अवस्थावाले हैं, उनकी भी सेवा करो। छोटोंका पालन-पोषण करना भी सेवा है। सदाचारकी शिक्षा देना भी सेवा है। वे उम्रभर सुख पायेंगे, इसलिये बालकोंको अच्छी शिक्षा दो। बेटा-बेटीको अच्छी शिक्षा दो, जिससे वे अच्छे बन जायँ।

ये माताएँ चाहें तो संसारका कल्याण कर सकती हैं, क्योंकि हम जितने भाई-बहिन हैं, ये सबसे पहले माँकी गोदमें आते हैं। माँकी गोदमें खेलते हैं। माँका दूध पीते हैं। माँके स्वभावका असर पड़ता है। महिलाएँ जैसी प्रकृति-(स्वभाव-) की होंगी, वैसे ही बालक-बालिकाएँ होंगे, बच्चे वैसे ही नागरिक बनेंगे बड़े होकर, वैसा ही वह देश बनेगा। माँ छोटी अवस्थामें जो शिक्षा देती है, वह बहुत काम करती है; क्योंकि बचपनमें पड़े हुए संस्कार बहुत काम करते हैं। अतः माताएँ चाहें तो देशका बड़ा सुधार कर सकती हैं। माताओंमें मातृत्व-शक्ति होती है, ये उसका उपयोग करें। भगवान्‌ने इन्हें शक्ति दी है। ये छोटी-छोटी बालिकाएँ हैं, ये भी अपने भाई-बहिनका जैसा पालन करती हैं बड़े लड़के

****

अपने भाई-बहिनका वैसा पालन नहीं करते। आप छोटे भाई-बहिनको बड़े भाईकी गोदमें देकर देख लो, बहिनें बड़े प्यारसे पालन करती हैं। बहिनें अपनी चीजें भी छोटे भाई-बहिनोंको खिला देंगी। भाई अपनी आप खा जायगा और उनकी भी खा जायगा। बालिकाओंके हृदयमें यह भाव नहीं आता कि यह चीज तो मेरी है। मैं क्यों दूँ ? तो यह भाव क्यों नहीं आता ?उसको पालन-पोषण करनेकी शक्ति भगवान्‌ने दी है, यह शक्ति माँ बननेके लिये दी है। यह जो शक्ति इन्हें दी है, यदि ये इस शक्तिका उपयोग करें तो बहुत सुगमतासे निर्मम हो सकती हैं।

इसका कारण यह है कि सबका पालन-पोषण करना, सबकी रक्षा करना और सबको सुख देना इनसे ममता दूर होती है। सेवा करनेसे अभिमान दूर होता है। यह बड़े ऊँचे दर्जेकी बात कही गयी है। अगर यह व्यवहारमें आ जाय तो काम बन जाय। काम-धन्धा ठीक करें। चीजोंको उदारतासे बरतें। औरोंको देवें। दोका आदर विशेषतासे होता है। एक तो जो उपकार करते हैं और दूसरे जो बड़े-बूढ़े पूजनीय होते हैं। बड़े-बूढ़े हैं, उनका आदर करें, आज्ञा मानें। जो दीन हैं, रोगी हैं, अभावग्रस्त हैं, उनकी सेवा करें। दीन-दुःखियोंमें भगवान् रहते हैं। यदि उनकी सेवा की जाय तो आपकी सेवा स्वीकार करनेके लिये भगवान् तैयार हैं। दीन-दुःखियोंसे घृणा मत करो। द्वेष मत करो। ईर्ष्या मत करो। अपनेमें अभिमान मत लाओ कि हम बड़े हैं। वास्तवमें आपमें जो बड़प्पन है, यह बड़प्पन उन छोटे आदमियोंका दिया हुआ है।

इसलिये उन गरीबोंको देनेसे धनका सदुपयोग होता है। धन होते हुए भी धनवत्ताका सुख देनेवाले गरीब हैं। जिनके दर्शन-

मात्रसे आपको प्रसन्नता होती है, उनकी सेवा करना आपका कर्त्तव्य है। बड़े-बूढ़ोंने आपका पालन किया है, रक्षा की है, विद्या दी है, बुद्धि दी है, सम्पत्ति दी है। उनकी सेवा करना भी आपका कर्त्तव्य है। अतः उनकी सेवा करो। उन्हें सुख पहुँचाओ, इससे हमारेपर जो पुराना ऋण है, वह उतर तो नहीं सकता, पर माफ हो जायगा। सेवासे अभिमान नहीं होगा और संसारमें रहनेकी विद्या आ जायगी। ऐसे प्रेम और सेवा होगी तो संसारके लोग चाहेंगे। जो सेवा करनेवाले हैं उनको सब लोग चाहते हैं।

मनुष्यको चाहिये जहाँ-कहीं रहे अपनी आवश्यकता पैदा कर दे। भाई हो या बहिन हो, साधु हो या गृहस्थ हो, कोई क्यों न हो। अपनी आवश्यकताको जरूर पैदा कर दे, तो वह संसारमें बड़े सुखसे रहेगा। आवश्यकता कैसे पैदा करें ? एक तो हर समय अच्छे-से-अच्छे काममें लगे रहो। यह समय बड़ा कीमती है। इस समयके समान कोई चीज कीमती नहीं है। आप समय देकर विद्वान् बन सकते हैं, समय देकर धनी बन सकते हैं। समय देकर बड़े कीर्तिवाले हो सकते हैं, परिवारवाले हो सकते हैं। ध्यान दें, समय लगानेसे सब चीजें मिल सकती हैं। परन्तु सब चीजें देनेपर भी समय नहीं मिलता। कोई कहे कि उम्रभरमें जो भी प्राप्त किया एक मिनट समयके लिये वह सब कुछ देता हूँ, पर उसके बदलेमें एक मिनटका समय भी नहीं मिल सकता। समय देनेसे सब मिल सकता है; परन्तु सब देनेपर भी समय नहीं मिलता है। समयको कितना कीमती कहें ? भागवतमें आया है—

तुल्याम लवेनापि न स्वर्गं नापुनर्भवम्।
भगवत्संगिसंगस्य मर्त्यानां किमुताशिषः॥

(१।१८।१३)

भगवान्के प्रेमी पुरुषोंका लवमात्रका संग अच्छा है, उससे न तो मुक्तिकी तुलना कर सकते हैं और न ही स्वर्गकी। गोस्वामीजीने भी कहा है—

तात स्वर्ग अपबर्ग सुख धरिअ तुला एक अंग।
तूल न ताहि सकल मिलि जो सुख लव सतसंग॥

(मानस ५।४)

संतके लवमात्र संग मिलनेके समान स्वर्ग और मुक्तिकी भी तुलना नहीं हो सकती। समय इतना कीमती है। समय मिले तो इसे बेकार मत जाने दो। इस समयको उत्तम-से-उत्तम, ऊँचे-से-ऊँचे काममें लगाओ। धनकी लोग बड़े आदरके साथ रक्षा करते हैं, तिजोरीमें बन्द कर देते हैं। धन तो तिजोरीमें बन्द हो सकता है, पर समय तिजोरीमें बन्द नहीं हो सकता। समय देनेसे धन मिलता है। धन देनेसे समय नहीं मिलता। समय तो हरदम सावधान होनेसे ही सार्थक होगा। नहीं तो निरर्थक बीत जायगा। जिन लोगोंने समयका आदर किया है, वे बड़े श्रेष्ठ पुरुष बन गये। वे अच्छे महात्मा बन गये, उन लोगोंने क्या किया है? जीवनका समय भगवत्-चरणोंमें लगाया है। संसारके भोगोंसे विमुख होकर परमात्म-तत्त्व जाननेके लिये समय लगाया है। वे संत और महात्मा बन गये। समयके बराबर कोई कीमती चीज नहीं है संसारमें। लवमात्रका सत्संग हो जाय। साधु-महात्माका संग हो जाय। भगवान्का संग हो जाय, प्रेम हो जाय। भगवान्में आकर्षित हो जाय। वह समय सबसे ऊँचा है।

अतः इस समयको उत्तम-से-उत्तम काममें खर्च करो। स्वाध्याय करो, जप करो, कीर्तन करो, सेवा करो। अच्छी पुस्तकोंका पठन-पाठन करो। विषय-भोगोंमें, ताश, हँसी-

दिल्लगी, नाच-तमाशा-सिनेमा, बीड़ी-सिगरेट आदिमें समय बरबाद मत करो। बीड़ी-सिगरेट पीते हैं। चिलम पीते हैं। आप जरा विचार करो, आपके पास जो समय है, उसमें भी आग लगाते हो, धुआँ करते हो। धुआँ हो गया, धुआँ ! आपका जो समय है उसमें भी आग लगती है। पाँच-सात मिनट आपने बीड़ी-सिगरेट पी तो उस समयमें भी धुआँ लग गया। पैसे गये, समय गया, स्वतन्त्रता गयी—राम ! राम ! राम ! राम ! अरे ! फायदा क्या हुआ ? किसी तरहका फायदा नहीं। जो नहीं पीते हैं, उन्हें आपने गन्दगी दे दी। उनकी नाकमें भी धुआँ चढ़ गया।

एक संतसे किसीने पूछा—महाराज ! आप बीड़ी पीते हो ? तो वे बोले पीते तो नहीं, पर लोग पिला देते हैं। गाड़ीमें बैठते हैं, लोग फूँक मारते हैं। अब क्या करें ? तो जो नहीं पीना चाहे, उन्हें लोग ऐसे पिला देते हैं। बताओ उन्हें तंग किया, दुःख दिया। कहा है—''**पर हित सरिस धर्म नहिं भाई। पर पीड़ा सम नहिं अधमाई ॥**'' दूसरोंको पीड़ा दी, तो आपको क्या मिला ? दूसरोंकी स्वतन्त्रतामें भी बाधा डाल दी और आप सदाके लिये परतन्त्र हो गये, वह भी धुएँके। ऐसे निकम्मे काममें समय लगाया। राम ! राम ! राम ! राम !

यह समय भगवान्‌के लिये लगाओ तो भगवान् मिल जायँ। भक्त बन जाओ। जिनके लिये भगवान् कहते हैं—''**मैं हूँ संतन का दास भगत मेरे मुकुट मणि**''। मुकुटमणि बन जाते हैं। कौन ? जो भगवान्‌के चरणोंमें समय लगाते हैं। भगवान् भी आदर करते हैं। उन्होंने क्या किया कि अपने समयको भगवान्‌के चरणोंमें लगाया। ऐसा समय ऐसे नष्ट करनेके लिये है। ताश खेलनेमें, पत्ते पीटनेमें समय लगा दिया। राम ! राम ! राम ! राम ! विद्या-

****

अध्ययन करते, सेवा करते, दूसरोंका उपकार करते तो समयका उपयोग होता। कितना बढ़िया काम होता है। वह समय ऐसे बरबाद कर दिया। यह समय ऐसे नष्ट करनेके लिये नहीं मिला है।

हमारी बहिनोंकी दशा क्या है ? इधर-उधरकी बातोंमें समय लगा देती हैं। राम ! राम ! राम ! घरपर कोई बात करनेको नहीं मिला तो पड़ोसीके यहाँ बातें करने चली जाती हैं। समय लगा देती हैं। अगर नाम-जप करो, कीर्तन करो, रामायणका पाठ करो, दिनभर राम-राम करो तो निहाल हो जाओगी। मीराबाईकी मुक्ति हो गयी। इसमें कारण क्या था ? भगवान्‌का भजन किया। वह भगवान्‌के भजनमें लग गयी तो आज मीराबाईके पद गाये जाते हैं। भगवान्‌में प्रेम पैदा होता है। कितनी ऊँची हो गयी मीराबाई ! संसारमें प्रसिद्ध हो गयी। उनका कितना ऊँचा नाम ! परन्तु किसीसे यदि पूछो कि मीराकी सासका क्या नाम है ? तो उत्तर मिलता है कि पता नहीं। भजन करनेसे जीव बड़ा होता है। अतः अपने समयको सार्थक करो। ऊँचे-से-ऊँचे, अच्छे-से-अच्छे, श्रेष्ठ-से-श्रेष्ठ काममें लगाओ। समय बरबाद मत करो। यह पहली बात है।

दूसरी बात—जो काम करें वह सुचारुरूपसे करें। काम करनेका तरीका, काम करनेकी विद्या बढ़ाते ही चले जाओ। लिखना-पढ़ना, बोलना, रसोई बनाना, कपड़े धोना, सफाई करना, झाड़ू देना, बर्तन आदि साफ करना है। बड़े सफाईसे करो, बड़ी सुन्दर रीतिसे करो। सुचारुरूपसे करनेसे काम अच्छा होगा। नौकरी ही करना है, तो नौकरीका काम ऐसे बढ़िया ढंगसे करो कि जिससे मालिक राजी हो जाय। यदि मालिक कभी नाराज होकर निकाल भी दे तो निकलना तो पड़ेगा, पर आपने वहाँ

काम-धन्धा करके जो विद्या हासिल कर ली, क्या वह उस विद्याको छीन लेगा ? नीतिमें आता है कि ब्रह्माजी भी वापिस नहीं ले सकते। काम करनेकी योग्यता है, आपका स्वभाव है, उसे कोई छीन नहीं सकेगा। वह गुण तो आपके पास रहेगा। वह कितनी बढ़िया बात है।

थोड़े समयमें, थोड़े खर्चेमें बढ़िया काम हो जाय, ऐसा स्वभाव बनाओ जो सब लोग खुश हो जायँ, प्रसन्न हो जायँ। गृहस्थोंसे ऐसी बातें हमने सुनी हैं, जो माताएँ-बहिनें चीजें अच्छी बनाती हैं, उनका सब आदर करते हैं, पर इस बातका अभिमान नहीं करना चाहिये। अभिमान तो पतन करनेवाला होता है। ***''निर्ममो निरहंकारः''*** अहंकार तो छोड़ना है। अरे ! काम-धन्धा करके फिर उससे भी अहंकार कर लो ! इसलिये सुन्दर रीतिसे काम करो, सुचारुरूपसे काम करो। मान-बड़ाईके लिये नहीं, रुपये-पैसोंके लिये नहीं, वाह-वाहके लिये नहीं। अपना अन्तःकरण शुद्ध करनेके लिये, निर्मल करनेके लिये, जिससे भगवान्‌में प्रेम बढ़े। प्रेम बढ़ानेके लिये काम-धन्धा करो, सेवा करो। काममें चातुर्य बढ़ानेसे आपकी माँग हो जायगी।

तीसरी बात—व्यक्तिगत खर्चा कम करो। दान-पुण्य करो। बड़े-बूढ़ोंकी रक्षा करो। दीनोंकी रक्षा करो। अभाव-ग्रस्तोंको दो। सेवा करो, पर अपने शरीरके निर्वाहके लिये साधारण वस्त्र, साधारण भोजन, साधारण मकान, उससे अपना निर्वाह करो। भाई-बहिन सबके लिये यह बड़े कामकी बात है। जो खर्चीला जीवन बना लेता है वह पराधीन हो जाता है। खर्चा कम करना तो हाथकी बात है और ज्यादा पैदा करना हाथकी बात नहीं। आजकल लोग खर्चा तो करते हैं ज्यादा और पैदाके लिये सहारा

****

लेते हैं झूठ-कपट, बेईमानी-धोखेबाजी, विश्वासघातका। इससे क्या अधिक कमा लेते हैं ? अधिक कमा लें यह हाथकी बात नहीं, खर्चा कम करना हाथकी बात है। जो हाथकी बात है उसे करते नहीं और जो हाथकी नहीं, वह होती नहीं। दुःख पाते रहते हैं उम्रभर। इस बातको समझ लें कि भाई, अपने व्यक्तिगत कम खर्चेसे ही काम चला सकते हैं। बढ़िया-से-बढ़िया माल खा लो और चाहे साधारण दाल-रोटी खा लो निर्वाह हो जायगा। यदि शरीर बीमार है तो दवाई ले लो। निर्वाहकी दृष्टिसे तो कोई बात नहीं, परन्तु स्वाद और शौकीनीकी दृष्टि ठीक नहीं है। यह बहुत बड़ी गलती है। इससे बचनेके लिये, स्वतन्त्र जीवन बितानेके लिये खर्चा कम करो।

धन कमाना आजकल होशियारी कहलाती है। लोग कहते हैं कि बड़ा होशियार है, कितना धन कमा लिया इसने। अरे ! धन क्या कमा लिया ? उम्र गवाँ दी। आप मरेंगे तो कौड़ी एक साथ चलेगी नहीं। धन कमानेके कारण जो झूठ-ठगी, बेईमानी, धोखेबाजी, विश्वासघात आदि अपनाना पड़ा, वह जमा हुआ है अन्तःकरणमें और धन रह जायगा बैंकोंमें, आलमारियोंमें, बक्सोंमें। यह साथ जायगा नहीं। धन संग्रह करनेमें जो-जो पाप किये वे साथ चलेंगे। तो यह पापकी पोट सिरपर रहेगी, साथ चलेगी। काले बाजारसे धन कमा लिया। आय-करकी चोरी कर ली। बिक्री-करकी चोरी कर ली। बड़ी होशियारी की। किया क्या ? महान् नाश कर लिया। महान् पतन कर लिया। साथ चलनेवाली पूँजी नष्ट कर दी और यहीं छूटनेवाली पूँजी संग्रह कर ली। मरनेपर कुछ साथ नहीं चलेगा। सब धन यहीं धरा रह जायगा। पीछे लोग खायेंगे और दुःख पाओगे आप। नरकोंमें

जाना पड़ेगा आपको, यह होशियारी है ? यह कोई समझदारी है ? कितनी बड़ी भारी बेसमझी है, मूर्खता है। तो अब क्या करें ? अब पाप छोड़ दो। अब बेईमानी, ठगी, झूठ-कपट, विश्वासघात, धोखेबाजी नहीं करेंगे। परिश्रम करेंगे जितना मिलेगा उसीसे काम चलायेंगे। पाप नहीं करेंगे। यह है चौथी बात।

कुछ लोग कहते हैं पहले जो पाप कर लिया, वह पाप तो हो ही गया। कलंक तो लग ही गया। अब धन क्यों छोड़ें ? यह बुद्धिमानी है क्या ? अरे भाई ! जैसे आप भोजन करने लगे। आपसे कहे कि यह क्या कर रहे हो ? इसमें जहर मिला है। आप यह नहीं कहोगे कि आपने पहले नहीं कहा, अब तो इसे खायेंगे ही। तुरन्त हाथका भोजन फेंक दोगे और उलटी करना शुरू करोगे। खाया हुआ भी निकल जाय तो बड़ा अच्छा है।

श्रोता—महाराज ! आपको पता नहीं। आजकल झूठ-कपटके बिना निर्वाह नहीं हो सकता। कानून ऐसा बन गया, संसार ऐसा ही हो गया। इसलिये इसके बिना काम नहीं चलता।

पू॰ श्री॰—अच्छा भाई ! काम चलाओ, कितने दिन चलाओगे ? बीस वर्ष, पचास वर्ष, सौ वर्ष कितने दिन चलाओगे ? इतना तो समय ही नहीं मिलता।

श्रोता—अगर नहीं कमायेंगे तो मर जायेंगे।

पू॰ श्री॰—क्या हर्ज है भाई ! आज बिना पापके मर जाओ। बादमें भी मरना तो है ही, साथमें पापकी गठरी बाँधकर क्या करोगे ? अरे भाई ! बिना पाप ही मर जाओ क्या हर्ज है ? पाप करनेके लिये मानव-शरीर मिला है क्या ? पाप नहीं करेंगे, अन्याय नहीं करेंगे, भगवान्‌की तरफ बढ़ें, इस प्रकार निश्चय करके बहुत-से लोगोंने मुक्ति पायी है। भाई ! समय अच्छे काममें

****

लगाओ, उत्तम काम करो। नीचा काम मत करो। हर भाई-बहिनको चाहिये कि पाप नहीं करें। अन्तःकरणको मैला न करें। सज्जनो ! अन्तःकरणको निर्मल रखो। यह जीवन पवित्र हो जाय। इसीलिये यह मानव-शरीर मिला है। अतः उत्तम-से-उत्तम काममें लगे रहना है। अन्यायपूर्वक काम नहीं करना है। ईमानदारीसे अपना जीवन-निर्वाह कर लेना है।

आजकल शादीमें लड़कोंकी नीलामी होती है नीलामी ! लड़कीका पिता बेचारा स्वयं तो शर्माता है, दूसरोंसे कहता है कि उनके लड़का है आप बात करो। हमारी कन्यासे सम्बन्ध कर लें। पूछते हैं, अमुककी लड़की है आप सम्बन्ध कर लो। जवाबमें, पन्द्रह हजार रुपये कीमत। राम ! राम ! राम ! राम ! आज ऐसी दशा है ! कन्याओंका ऐसा तिरस्कार ! ऐसे स्त्री-जातिका तिरस्कार करना ठीक नहीं। किस बातपर हुआ ? पैसोंके बदले। अरे ! पैसे तो आज हैं, कल नहीं। पैसे तो नष्ट होनेवाले हैं। कितनी बड़ी भारी दुःखकी बात है। पैसोंके बदले मनुष्यका तिरस्कार। बड़े पापकी बात है। अन्यायकी बात है। भाइयों और बहिनोंसे कहना है कि लड़का ब्याहना हो तो गरीब घरकी लड़की लो। वह काम-धन्धा करेगी, अच्छा व्यवहार करेगी। बड़े घरकी लड़की काम-धन्धा तो करेगी नहीं, मालकिन बन जायगी।

एक लड़कीकी बात हमने सुनी। उस लड़कीकी शादी हो गयी। लड़की थी गरीब घरकी, लड़केवालोंने पैसा माँगा ज्यादा। उसका जी ऊब गया। लड़कीकी बड़ी अवस्था हो गयी थी। उसने कहा, पिताजी ! आप उधार लेकर उनसे विवाह कर दीजिये, अभी कोई बात नहीं, फिर मैं ठीक कर लूँगी। परन्तु आप मेरे लिये दान रूपसे मत देना। कन्याको उधार देता हूँ, ऐसा देना।

****

कर दी शादी, शादी करनेके बाद धन खूब दिया। शादीके बाद वह गयी ससुरालमें तो खाटपर बैठ गयी और पतिसे कहा—'लाओ मेरी जूती लाओ।'

'तेरी जूती मैं उठाऊँ !' आश्चर्यसे पूछा।

'मेरे बापने पैसा दिया है, आपको खरीदा है। पता है कि नहीं ?'

'कितने रुपये लगे ?'

'हजारों रुपये लगे हैं।' कन्याने उत्तर दिया।

अब उस लड़केने भोजन नहीं किया। माँने पूछा क्या बात है ? 'माँ ! मेरी जो स्त्री आयी है वह यहाँतक कहती है कि मेरी जूती उठाकर लाओ।'

'बहू ! ऐसा क्यों कहती हो ?' माँने पूछा।

'हमारे बापने इतना खर्चा किया है, कर्जा लेकर खर्च किया है, इसलिये यह नौकर है हमारा, इसे लाना पड़ेगा।'

लड़केने कहा—'मैं तो जूती नहीं उठाऊँगा, अगर ऐसी बात है तो मैं रोटी नहीं खाऊँगा।'

'मेरे बापके नौकर हो, मेरे बापने रुपये दिये हैं। पता है कि नहीं। ऐसे मुफ्त आये हैं क्या आप ! इतना इन्तजाम किया है। सोलह हजार रुपये उधार लिये थे।'

इस प्रकार कहने-सुननेसे लड़केवालोंने रुपया वापिस किया और लड़की बहूकी तरह रहने लगी। कन्याएँ लज्जाकी मूर्ति हैं। इनका इस प्रकार तिरस्कार करना, समाजमें बड़ा अपमान होता है।

बड़े दुःखकी बात है ! खर्चा तो पूरा करते हो, फिर काम नहीं चलता तो बेईमानी करते हो। बड़े अन्यायकी बात है। इसका नतीजा खराब होगा। जो अन्याय करते हैं उनकी आत्माको शान्ति

नहीं मिलेगी। जो धन दुःख देकर लिया जायगा, वह धन आकर आग लगायेगा।

गायका दूध पीते हैं उसे छानते हैं कि कहीं रूआँ (बाल) न आ जाय। दूध तो प्रसन्नतासे दिया जाता है, बाल टूटनेसे खून आता है खून। बाल आ जाय तो क्या हर्ज है ? अरे रूआँ एक भी टूटेगा तो गौ माताको दुःख होगा। अतः दुःख देकर ली हुई चीज बड़ी अनिष्टकारी होती है। लड़केवालोंको कहना चाहिये कि हम धन नहीं लेंगे हम तो केवल कन्या लेंगे। कन्या-दान लेते हैं, कन्या-दान लेना भी तो दान है, बड़ा भारी दान है ! क्यों लेते हैं ? अभी हम लेंगे तो आगे भगवान् हमें पुत्री देंगे तो हम भी कन्या-दान करेंगे। ऐसा रिवाज है कि दहेजकी चीजें भी घरमें नहीं रखते, उसे कुटुम्बमें, परिवारमें लगा देते हैं। बेटीको, ब्राह्मणोंको सबको बाँट देते हैं। घरमें कोई चीज न रह जाय ऐसे मिठाई आदि बाँटते हैं। अपनेपर तो कर्जा नहीं रहा और लोग सब राजी होते हैं।

शादीके बाद बहूके पीहरसे कोई चीज आती है तो सास आदि उसकी निन्दा करती हैं कि क्या चीज भेजी ? बहूरानी सुन रही है, उसको लगे बुरा। भला माँकी निन्दा किसको अच्छी लगेगी ? माँकी निन्दासे हृदयमें दुःख होता है। बादमें जब वह हो जायगी मालकिन तो जो वह चाहेगी वही होगा। इसलिये उसे प्यार करो, स्नेह करो, राजी रखो, बहूके घरसे जो आया उसमें अपने घरसे मिलाकर बाँटो। लोगोंसे कहो कि ऐसा बहुत आया है। तो बहूकी माँकी हो जायगी बड़ाई, इससे बहू खुश हो जायगी। आप कहेंगे कि रुपया लगता है। अरे रुपया तो लगता है, पर बीस-पचास रुपये और लगानेसे आदमी अपना हो जायगा। बहू आपकी हो जायगी। सदाके लिये खरीदी जायगी। सौ-पचास

****

रुपयेमें कोई आदमी खरीदा जाय तो कोई महँगा है ? सस्ता ही पड़ेगा। गहरा विचार करो। व्यवहार भी अच्छा रहेगा। प्रेम भी बढ़ेगा। बहू भी राजी होगी कि मेरी सासने मेरी माँकी महिमा की है। इतना खर्च किया ! उम्रभर असर पड़ेगा, इसलिये भाई ! थोड़ा-सा त्याग करो। खेती करनेवाले कितना बढ़िया-से-बढ़िया अनाज होता है, उसे मिट्टीमें मिला देते हैं। क्यों ? खेती होती है। इसी तरह आप भी त्याग करो। उसका फल बड़ा अच्छा होगा।

जो वस्तुएँ मिली हैं उनका सदुपयोग किया जाय। लड़के-लड़कीका ठीक तरहसे पालन किया जाय, अच्छी शिक्षा दी जाय। उनके अच्छे भाव बनाये जायँ, सद्‌गुणी और सदाचारी बनें। पैसे कमानेमें तो आपको समय रहता है, परन्तु बच्चे क्या कर रहे हैं, कैसे पल रहे हैं, क्या शिक्षा पा रहे हैं, इन बातोंकी तरफ आप खयाल ही नहीं करते। अरे भाई ! यह सम्पत्ति है असली। यह मनुष्य महान् हो जायगा। कितनी बढ़िया बात होगी ! जितने-जितने महापुरुष हुए हैं, उनकी माताएँ बड़ी श्रेष्ठ हुई हैं। ऐसी माताओंके बालक बढ़िया हुए हैं। संत-महात्मा हुए हैं। माँका स्वभाव आता है बालकोंमें। इस कारण माताओंको चाहिये कि बालकोंको अच्छी शिक्षा दें। परन्तु शिक्षा देती हैं उलटी, लड़कियोंको सिखाती हैं कि अपना धन तो रखना अपने पासमें। जब अलग होगी तो वह धन तेरे पासमें रह जायगा और ऐसे सिखाकर भेजती हैं कि ससुरालमें काम तू क्यों करे, तेरी जिठानी करे, ननद करे। तू काम मत किया कर। अब वहाँ कलह होगी, खटपट मचेगी। आपके बहू आयेगी, वह भी अगर ऐसी सीखी हुई आ जायगी तो वह भी ऐसा ही करेगी, काम नहीं करेगी। फिर आप कहेंगी कि हमारी बहू काम नहीं करती। आप अच्छा करो

****

तो आपके लिये अच्छा होगा। बुरा करो तो बुरा होगा भाई !

कलियुग है इस हाथ दे, उस हाथ ले, क्या खूब सौदा नगद है।

इसलिये आप अपने माता-पिताका, सास-ससुरका आदर करो, सेवा करो, सत्कार करो तो आपका असर पड़ेगा बालकोंपर। वृद्धावस्थामें भी आपकी सेवा करेंगे। परन्तु आप अगर ऐसा नहीं करोगे, अपने माइतोंकी सेवा नहीं करोगे तो बालकोंपर भी ऐसा ही असर पड़ेगा। उनका स्वभाव भी ऐसा ही बनेगा। आप सदा ही ऐसे नहीं रहोगे। जीते रहोगे तो बूढ़े भी होओगे। उस समय वे सेवा नहीं करेंगे, फिर आप कहेंगे कि ये सेवा नहीं करते, बात नहीं मानते। तो तुमने अपने माइतों-(बड़ों-) की सेवा कितनी की ? अब तुम क्यों आशा रखो ? इसलिये अपना आचरण अच्छा बनाओ।

आजकल तो माँ-बाप बच्चोंको व्यसन सिखाते हैं। खेल सिखाते हैं। चाय पिलाते हैं, छोटे-छोटे छोरोंको। आजकल छोरा दूध नहीं पी सकते। मलाई आ जाय तो घृणा करते हैं। बड़े आश्चर्यकी बात है ! हमें तो बचपनकी बात याद है, दूध पीना होता तो कहते थे कि क्या है इसमें तारा (घीकी बूँदें) तो है ही नहीं ! आजकल घी तो कौन पी सके, हिम्मत ही नहीं है। वे मलाई ही नहीं पी सकते। चाय पीते हैं। राम ! राम ! राम ! राम ! चायसे माथा खराब हो जाय नींद आवे नहीं। स्वास्थ्य बिगड़ जाय। आँखें खराब हो जायँ दवाई लगे नहीं और पैसा लगे ज्यादा मुफ्तमें। यह दशा हो रही है। तो भाई ! ऐसा मत करो। गायोंका पालन करो, उनकी रक्षा करो। आपका जो गाँव है, कस्बा है। अकाल पड़ जाय तो गायोंके लिये आप खर्च करो तो बड़ा अच्छा है। मोटर आप रख लेते हो धुएँके लिये और गायें

नहीं रख सकते। कुत्ता-पालन तो कर लेंगे, गऊका पालन नहीं करेंगे। वाह ! वाह ! वाह ! रे कलियुग महाराज ! आपने लीला अजब दिखायी ! यह दशा हो रही है।

आप बाल-बच्चोंको व्यसन मत सिखाओ। कपड़े आदि बढ़िया (फैशनवाले) पहनाकर राजी होते हैं कि हमारे बच्चे ठीक हो रहे हैं। उनकी आदत बिगड़ रही है बेचारोंकी। इसलिये सादगी रखो, अपने भी सादगी, बाल-बच्चोंके भी सादगी। अच्छे ढंगसे काम कराओ, उत्साह रखो, काम-धन्धा ठीक कराओ। बाल-बच्चोंसे भी काम कराओ। आपके घर नौकर है (नौकर रखनेकी जरूरत है तो रखो)। नौकर रखकर नौकरोंके वशीभूत मत हो जाओ। नौकर बढ़िया काम नहीं करेगा, आपको भी सब काम करना आना चाहिये। नौकर जितना काम करते हैं, आपको आ जाय तो आपको चकमा नहीं दे सकते। रसोइया कहे—घी तो इतना लग गया। अरे ! हम जानते हैं। इतना घी कैसे लग गया ? आप करना जानोगे तो आप शासन कर सकोगे। नहीं तो इतना लग गया ? हाँ साहब लग गया। कैसे बतायें यह बात ? आजकल काम-धन्धा करनेमें बेइज्जती समझने लगे।

माता सीता काम करती थीं। रसोई बनाती थीं, लक्ष्मण आदि थे, उन्हें बड़े प्यारसे भोजन कराती थीं। स्वयं खटकर परिश्रम करके सासुओंकी सेवा करती थीं। क्या वह छोटे घरकी हो गयीं ? सैकड़ों ही नहीं हजारों दासियाँ थीं, उनके सामने अपने घरका काम करती थीं। लड़नेमें तो बेइज्जती नहीं समझतीं, घरके काम करनेमें बेइज्जती समझती हैं; बड़े पतनकी बात है। अतः अपना समय ठीकसे लगाओ। अच्छी आदत बननेपर आपकी ग्राहकता हो जायगी। सब आपको चाहेंगे, आपकी आवश्यकता

पैदा होगी। घरके, बाहरके सब लोग चाहेंगे और यदि ऐसा नहीं करोगे तो समय तो निकल जायगा हाथोंसे और आदत बिगड़ जायगी। बिगड़ी हुई आदत साथ चलेगी, स्वभाव बिगड़ जायगा। यह जन्म-जन्मान्त्तरोंतक साथ चलेगा। स्वभाव जिसने अपना निर्मल, शुद्ध बना लिया है, उसने असली काम बना लिया है। अपने साथमें चलनेकी असली पूँजी संग्रह कर ली। स्वभावको शुद्ध बनाओ, निर्मल बनाओ। तो क्या होगा ? ममता छूटेगी। सेवा करनेसे अहंकार छूटेगा। निर्मम-निरहंकार हो जाओगे। संसारका काम करते-करते ऊँची-से-ऊँची स्थितिको प्राप्त हो जाओगे। बस, लग जाओ तब काम होगा। इसलिये भाइयोंसे, बहिनोंसे कहना है कि सत्संग सुनो और सुननेके अनुसार अपना जीवन बनाओ। ऐसा जीवन बनेगा तो जीवन-निर्वाह होगा और मनमें भी शान्ति रहेगी। ***"निर्ममो निरहंकारः स शान्तिमधिगच्छति"।*** (गीता २।७१) महान् शान्तिकी प्राप्ति होगी। इस प्रकार भगवद्‌गीता व्यवहारमें परमार्थ सिखाती है। युद्धके समयमें कह दिया—

सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ।
ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि॥

(२।३८)

युद्धसे परमात्माकी प्राप्ति हो जाय, कामको भगवान्‌का समझो, उत्साहसे करो। सेवा करनेवाला पवित्र हो जाता है। भगवान्‌का भजन हरदम करते रहो जिससे सद्‌बुद्धि कायम रहे। भगवान्‌की याद बनी रहे।

नारायण ! नारायण ! नारायण !

——★——

पञ्चामृत

आप जहाँ रहते हैं, वहाँ अपने घरमें रहते हैं, अपने घरमें रहनेका माहात्म्य नहीं है, पर भगवान्‌के दरबारमें रहें तो बड़ा भारी माहात्म्य है। इस घरको तो आपने अपना माना है। पर यह घर पहलेसे भगवान्‌का ही था। अब भी है और पीछे भी भगवान्‌का ही रहेगा। मरोगे तो यह घर साथ थोड़े ही चलेगा। यह तो भगवान्‌का ही है। अतः आजसे आप मान लो कि भगवान्‌के घरमें रहते हैं। साक्षात् भगवान्‌के घरमें ही रहते हो। हरिद्वार आते हैं तो कहते हैं—ओहो ! हरकी पेड़ियाँ हैं ये तो। वृन्दावन आ गये तो कहते हैं—भगवान्‌की लीलाभूमिमें हैं। अयोध्यामें आ गये तो भगवान्‌के दरबारमें आ गये। भगवान्‌का दरबार मान लो, भगवान्‌का घर मान लो तो वही घर वृन्दावन हो गया। हरदम यही बात रहे कि हम तो भगवान्‌के घरमें ही रहते हैं और खास लाड़ले हैं हम तो भगवान्‌के। आजसे यह बात मान लो। अपने-अपने घरोंको अपना घर मत मानो। अरे ! भगवान्‌का ही घर है। अपना घर तो बीचमें माना है। पहले भगवान्‌का था और पीछे भी भगवान्‌का रहेगा। फिर बीचमें अपना कैसे हो गया ? छापा मारा है मुफ्तमें।

एक बातपर और ध्यान देना—जो भी काम करो, भगवान्‌का मानकर करो। खेती करो चाहे घरका काम-धन्धा करो, भोजन करो चाहे भजन करो, कपड़ा धोओ चाहे स्नान करो। शरीर भी

भगवान्‌का है, तो भगवान्‌की सेवाके लिये इसका काम करते हैं। खाना-पीना भी भगवान्‌का काम है, काम-धन्धा भी भगवान्‌का ही करते हैं, सब संसारके मालिक भगवान् हैं तो सब शरीरोंके मालिक भी भगवान् हैं। तो शरीरोंका और संसारका काम किसका हुआ ? भगवान्‌का ही हुआ। कैसी मौजकी बात है ! भगवान्‌के दरबारमें रहते हैं और काम-धन्धा भी भगवान्‌का ही करते हैं—दो बातें हुईं।

अब तीसरी बात—घरमें जितनी चीजें हैं ये भी भगवान्‌की ही हैं। घर भगवान्‌का और आप भगवान्‌के तो चीजें किसी दूसरेकी हो सकती हैं क्या ? माताओं और बहिनोंको चाहिये कि उन भगवान्‌की चीजोंको लेकर रसोई बनावें। मनमें समझें कि ओ हो ! मैं तो ठाकुरजीको भोग लगानेके लिये प्रसाद बना रही हूँ। ठाकुरजीके भोग लगावें। ठाकुरजीको भोग लगाकर घरके जितने लोग हैं, उनको ठाकुरजीके जन (पाहुने) समझकर प्रसाद जिमावें। उन्हें ऐसा मानें कि ये सब ठाकुरजीके प्यारे जन हैं। ठाकुरजीके प्यारे लाड़ले बालक हैं। इनको भोजन करा रही हूँ। ठाकुरजीकी सेवा कर रही हूँ। जैसे किसी बच्चेको प्यार करे तो उसकी माता राजी हो जावे कि नहीं ? ऐसे ही भगवान्‌के बालकोंकी सेवा करें तो भगवान् राजी हो जावें। कैसी मौजकी बात है ! भगवान्‌की रसोई बनायी, भगवान्‌के ही भोग लगाया और भगवान्‌के ही बालकोंको भोग, प्रसाद जिमा दिया। अपने भी भोजन करें तो ठाकुरजीका प्रसाद समझते हुए भोजन करें। ठाकुरजीका प्रसाद है। कैसी मौजकी बात !

तुम्हहि निबेदित भोजन करहीं।
प्रभु प्रसाद पट भूषन धरहीं।

(मानस २। १२८। १)

केवल भोजन ही नहीं गहना पहनें तो ठाकुरजीके अर्पण करके। ठाकुरजीका ही कपड़ा पहनें। सब चीजें प्रसादरूपमें ग्रहण करें तो सब चीजें पवित्र हो जाती हैं। आपने देखा है कि नहीं, ठाकुरजीके प्रसाद लगावें और वह बाँटें तो हरेक आदमी हाथ पसारेगा। छोटे-से-छोटा कणका दो तो वह राजी हो जायगा। लखपति हो चाहे करोड़पति हो, आपके सामने हाथ पसारेगा और प्रसादका आप छोटा-सा कणका दे दें, वह राजी हो जायगा। वह क्या मीठेका भूखा है ?

कोई लखपति, करोड़पति आपसे प्रसाद माँगे और अगर उसे कहें कि चलो बाजारमें मीठा दिलाऊँ आपको। तो वह नाराज हो जायगा। वह धनी आदमी कहेगा कि मिठाईका भूखा हूँ क्या मैं ? हमें प्रसाद चाहिये। प्रसादका कितना महत्त्व है बताओ ? ठाकुरजीका प्रसाद है। घरमें सब चीजें ठाकुरजीकी हैं।

आप करें तो एक बात बतावें बहुत बढ़िया ! कृपा करके कर लें तो बहुत बढ़िया और फायदेकी बात है। घरमें जितना धन पड़ा है सबपर तुलसीदल रख दो। जितने गहने, कपड़े हैं सबपर तुलसीदल रख दो। जितने रुपये-पैसे पड़े हैं तिजोरियोंमें सबपर तुलसीदल रख दो। घरपर भी धर दो। जितने भी गाय, भेड़, बकरी हैं, उनपर तुलसीदल रख दो। छोरा-छोरीपर भी धर दो। किनके बालक हैं ? ठाकुरजीके बालक हैं।

एक चमत्कार है। आप कर सको तो बतावें, प्रर हृदयसे करो, जब होवे। छोरा उद्दण्ड है और कहना मानता नहीं। सच्चे हृदयसे अपनी ममता उठा लो कि मेरा है ही नहीं। केवल ठाकुरजीका ही है। छोरा बिलकुल सुधर जायगा। जैसे ठाकुरजीके भोग लगानेसे चीजें पवित्र हो जाती हैं। बड़े-बड़े

पुरुष आदर करते हैं। ऐसे सच्चे हृदयसे अपनी ममता बिलकुल मिटाकर, केवल ठाकुरजीका ही मान लें तो वह शुद्ध हो जायगा। पवित्र हो जायगा। ऐसी बात करके देखो। शर्त यह है कि अपनी ममता बिलकुल उठा लें। जैसे मुसलमानोंका छोरा है, ऐसा ही यह छोरा है। मर जाय तो कोई असर नहीं हमारेपर। हमारा छोरा नहीं है अब मरा तो ठाकुरजीका। जब कि ठाकुरजीका मरता ही नहीं। यहाँ मर गया तो वहाँ जन्मा। ठाकुरजीसे बाहर होता ही नहीं। ऐसा करनेसे छोरा पवित्र हो जायगा। एकदम बात ठीक है। ममता ही मलिनता है। इसके कारण ही मलिन होता है। दान-पुण्य करते हैं तो इनके साथ अपना कोई सम्बन्ध नहीं मानें। ***"दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे"।*** (गीता १७। २०) 'अनुपकारिणे' का अर्थ यह नहीं कि कोई उपकार न कर दे हमारा। मानो पहले उपकार किया नहीं और आगे भी आशा नहीं है। ऐसेको दिया जाय, जिनसे अपना स्वार्थका सम्बन्ध न हो उनको दो चाहे घरवालोंके साथ स्वार्थका सम्बन्ध न रखो। एक ही बात रहेगी। टोटल एक आयेगा। चाहे तो अपनापन न हो, वहाँ सेवा करो अथवा जहाँ सेवा करो वहाँ अपनापन मिटा दो—एक ही बात होगी।

भगवान्‌के हैं हम। भगवान्‌के दरबारमें रहते हैं। भगवान्‌का ही काम करते हैं। भगवान्‌के प्रसादसे भगवान्‌के जनोंकी सेवा करते हैं। मैं भी भगवान्‌का ही प्रसाद पाता हूँ—यह पञ्चामृत है असली। आजसे इस बातको पकड़ लो। ***"सर्वभावेन मां भजति"*** और सब भावोंसे भगवान्‌का ही भजन करें। सब काम करें, स्नान करें, शरीरको शुद्ध करें, तो भाव रखें कि ठाकुरजीका शरीर है। ठाकुरजीका काम करता हूँ मैं। तो ठाकुरजीपर एहसान

कर सकते हैं कि महाराज ! आपका काम करता हूँ।

एक ब्राह्मण कहा करते थे— मैं रोज एक ब्राह्मण जिमाता हूँ। स्वयं भोजन करते थे, भाव रखते कि रोज एक ब्राह्मण जिमाता हूँ। यह कितनी बढ़िया बात है ! ऐसे ही परिवार-का-परिवार ठाकुरजीका। ठाकुरजीके परिवारका पालन करता हूँ। ठाकुरजी भी कहें कि मेरे परिवारका पालन करता है भाई ! भगवान्‌पर असर पड़ेगा कि हाँ, ठीक बात है। यह अपनापन नहीं रखता है। अपनी ममता नहीं रखता। यह तो मेरे परिवारका पालन करता है।

सब भावसे भगवान्‌का ही काम हो जाय, यह अव्यभिचारी भक्ति हो जायगी। अपने कुछ लेना नहीं, अपनी ममता नहीं है। न स्वार्थ है न ममता, घरवाले मानें या न मानें, सेवा करें या न करें, अपनेको तो ठाकुरजीके परिवारका पालन करना है। उनकी सेवा करनी है भाई ! परिवारके लोग काम न करें तो राजी होना चाहिये कि बहुत अच्छी बात है। अगर काम कर दें, अनुकूल चलें तो समझना चाहिये कि हमारा किया हुआ बिक्री हो जायगा। सेवा की हुई बिक्री हो जायगी। इसलिये यदि वे कुछ भी नहीं करें और दुःख दें तो अच्छा है। सासु भी दुःख दे, बहू भी दुःख दे, देवरानी-जिठानी, ननद आदि सब दुःख देवें तो राजी होना चाहिये कि बहुत ही निहाल हो गये। अपने तो सेवा करनी है और ये दुःख देवें तो दुगुना फायदा होगा। एक तो सेवाका लाभ होगा और ये दुःख दें तो पाप कटेंगे। दुःख कब रहेगा बताओ ? दुःख मिलनेमें भी आनन्द होगा। दुःखकी जगह ही नहीं रही, सब गली बन्द हो गयी तो वही सर्ववित् है। ठीक तरह समझ गया। यदि संसारसे सुखी और दुःखी होता है तो समझा नहीं।

हम तो मस्तीमें बैठे रहें। अपनेको कोई किंचिन्मात्र भी दुःख

****

नहीं। भगवान् सबका भरण-पोषण करते हैं। सबका पालन करते हैं तो ऐसे भगवान्‌के भक्तोंको दुःख होता ही नहीं। वे हरदम मौजमें रहते हैं, इतने मस्त रहते हैं कि उनके संगसे मस्ती हो जाती है। ठाकुरजीकी याद करनेसे बन्धन टूट जाय। नाम लेनेसे, याद करनेसे, लीला सुननेसे पाप नष्ट हो जाय इतने महान् पवित्र।

पवित्राणां पवित्रं यो मङ्गलानां च मङ्गलम्।

मूलमें बात क्या है? एक छोटी-सी बात है। ''मैं भगवान्‌का ही हूँ'' बस औरका नहीं हूँ। सेवा करनेके लिये संसारका, परन्तु अपना मतलब निकालनेके लिये किसीका नहीं हूँ। केवल भगवान्‌का हूँ, अपनेको केवल भगवान्‌का मान लो तो घर भगवान्‌का, दरबार भगवान्‌का, परिवार भगवान्‌का, सम्पत्ति भगवान्‌की, काम भगवान्‌का, प्रसाद भगवान्‌का, सब भगवान्‌का हो जायगा। यह बात एकदम सच्ची है।

आपको बिलकुल अनुभवकी बात बतावें। जिस बालकको माँने अपना माना है, वह छोरा दौड़कर गोदमें चढ़ जाय तो माँ हँसेगी। पीछेसे पीठपर चढ़ जाय तो माँ हँसेगी और जानकर ऊँ-ऊँ-ऊँ करके रोता है तो माँ हँसती है कि देखो ठगाई करता है मेरेसे। छोरेकी वह कौन-सी क्रिया है, जिससे माँको प्रसन्नता नहीं होती है। वह बालक जो करता है माँ उससे राजी होती है। कारण क्या है? छोरा मेरा है। ऐसे ही हम भगवान्‌के बनकर जो भी करें, हमारी हर क्रिया भगवान्‌का भजन हो जायगी। भजन क्या? भगवान्‌की प्रसन्नता। कुछ भी काम करो भगवान् खुश होते रहते हैं। मेरा बच्चा है। यह मेरा बालक खेल रहा है। कैसी मस्ती है!

बात एक ही है। भगवान्‌का होना। सच्ची बात है। आपसे पूछा जाय कि आपने इस घरमें जानकर जन्म लिया है क्या? जीते

हो तो जानकर जीते हो क्या ? जानकर जीवें तो मरे कौन भाई ? मरे ही नहीं। स्वस्थ शरीरमें रहते हो तो जानकर रहते हो क्या ? अगर जानकर रहते हो तो बीमार मत पड़ो। शरीरमें जो बल-बुद्धि है वह जानकर प्राप्त की है क्या ? तो बूढ़े मत होवो। पराधीन मत हो। पर पराधीन हो जाते हैं। इसलिये केवल अभिमान घरका है और कुछ नहीं। कोरा अभिमान करते हो। इसलिये हम ठाकुरजीके हैं। ठाकुरजीके अधीन हैं। ठाकुरजी जो शक्ति दें, वही करते हैं।

हनुमान्‌जीने कितना काम किया ? रामजी लंकामें गये तो पुल बनवाया और पुल बनवाकर पार पहुँचे। परन्तु हनुमान्‌जी कूद गये। इनमें बल किसका है ? बल ठाकुरजीका है। **''बार बार रघुबीर सँभारी''**। **''प्रबिसि नगर कीजे सब काजा। हृदयँ राखि कोसलपुर राजा''**॥ वाल्मीकिरामायणमें आता है कि हनुमान्‌जीने ऐसी गर्जना की कि हजार रावण भी आ जायँ तो मेरा कुछ नहीं बिगाड़ सकते, क्योंकि मैं ठाकुरजीका दास हूँ।

अपना अभिमान करके दुःख पा रही है दुनिया। इसलिये कृपा करके अभिमान छोड़ दो, भगवान्‌के अर्पण कर दो कि हम तो ठाकुरजीके हैं। अपनी शक्ति सब ठाकुरजीके काममें लगानी है। ***''त्वदीयं वस्तु गोविन्द तुभ्यमेव समर्पये''***, ***''सर्वभावेन भजति माम्''*** सब भावसे भगवान्‌को भजते हैं। नाम-जप भजन है, कीर्तन भजन है, पाठ भी भजन है, सुनना, कहना, सब भजन है। और तो क्या ***''सर्वभावेन भजति''*** उठना, बैठना, खाना, पीना, सोना, जागना, भगवान्‌का काम कर रहे हैं। कितने ऊँचे

अर्पण हो गये और भगवान्‌का ही काम करेंगे। काम हमारा है ही नहीं। यह हमारा घर नहीं तो इसका काम हमारा नहीं। सब भगवान्‌का काम है।

मैंने संतोंसे सुना है कि जिनके अपना करके कुछ नहीं है, न मन अपना है, न बुद्धि अपनी है, न शरीर अपना है, न प्राण अपने हैं, न इन्द्रियाँ अपनी हैं, न घर अपना है, न सम्पत्ति अपनी है। सब चीजें ठाकुरजीकी हैं, वे जहाँ रहते हैं मौज रहती है। सब भगवान्‌के अर्पण कर दी। इसलिये मस्तीमें रहते हैं हरदम।

एक संतकी एक बात सुनी है हमने। संत बड़े विचित्र होते हैं। वे बाजारमें जब जाते और देखते कि बहुत बढ़िया-बढ़िया मिठाइयाँ रखी हैं, फल पड़े हैं, दुकानें सजी हुई हैं। जहाँ देखते बढ़िया चीज वहीं खड़े हो जाते और मनसे कहते कि ठाकुरजी भोग लगाइये। बरफी है, इमरती है, जलेबी है, लड्डू है, इनका भोग लगाइये। बस खड़े होकर मस्तीसे भोग लगा देते। ऐसे आप भी ठाकुरजीके अर्पण कर दो कि भोग लगाइये तो ठाकुरजीके अर्पण हो जाता है। आप कहो कि क्या जोर आवे इसमें ? तो करो आप भी। कौन मना करता है ? जहाँ बढ़िया चीज देखो, ठाकुरजीके अर्पण कर दो।

सब कुछ ठाकुरजीका है। हम क्या करें ? हम तो मौज करेंगे। अब हमारा कोई काम तो रहा नहीं। केवल ठाकुरजीका काम है, ठाकुरजीका नाम है, ठाकुरजीका चिन्तन है, ठाकुरजीकी बात सुननी है। आपका काम क्या रहा ? ठाकुरजीका काम करते हैं। सब संसारके मालिक भगवान् हैं। मालिकके चरणोंमें मालिककी चीजें अर्पण करते हुए आपको क्या जोर आता है बताओ ? आप कहते हो मेरी है, पर कितने दिनोंसे, कितने वर्षोंसे

मेरी कहते हो ? कितने वर्षोंतक मेरी कहते रहोगे ? आखिर तो वह रहेगी ठाकुरजीकी ही। जीते-जी ही भगवान्‌को अर्पण कर दो अपने हृदयसे, तो मौज हो जायगी। कितनी सुगम और कितनी बड़ी भारी बात !

संतोंकी साखी आती है—

राम नाम की सम्पदा दो अन्तर तक धूण।
या तो गुपती बात है कहो बतावे कूंण ॥

कौन बताता है ऐसी बढ़िया बात ! और कितनी सुगम ! कितने ऊँचे दर्जेकी ! कितनी निश्चिन्तताकी, निर्भयताकी, आनन्दकी बात है ! न चिन्ता है, न भय है, न उद्वेग है, न जीनेकी इच्छा है, न मरनेकी इच्छा है। हमारी इच्छा कुछ नहीं। ठाकुरजीकी इच्छामें इच्छा मिला दी। अब ठाकुरजी जैसा करें, जैसा रखें।

जाही विधि राखे राम ताही विधि रहिये।
सीताराम सीताराम सीताराम कहिये ॥

अपनी कोई माँग नहीं, कोई इच्छा नहीं। इससे आफत तो हमारी मिट जाय और भगवान् राजी हो जायँ। मेरी माननेसे चिन्ता रहती है। मेरा कमरा है। अमुक चीज वहाँ पड़ी है। कपड़ा वहाँ सुखाया है। कोई ले जायगा तो चिन्ता रहती है। ठाकुरजीको अर्पण कर दिया तो कैसी मौज है ! गया तो ठाकुरजीका, रहा तो ठाकुरजीका !

नारायण ! नारायण ! नारायण !

—— ★ ——

शरणागति

भगवान्‌ने भगवद्‌गीतामें सबसे श्रेष्ठ भक्तियोगको कहा है जो कि शरणागति है। उपदेश भी आरम्भ हुआ है अर्जुनके शरण होनेसे और अन्तिम उपदेश यही दिया है कि—

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

(गीता १८। ६६)

इससे पहले भगवान्‌ने 'गुह्य' कहा, 'गुह्यतर' कहा, 'गुह्यतम' कहा और यहाँ 'सर्वगुह्यतम' (१८। ६४) कहा। तो सबसे अत्यन्त गोपनीय बात कहते हैं ***''मामेकं शरणं व्रज''*** एक मेरी शरण हो जा। अर्जुनने पूछा था कि ***''धर्मसम्मूढचेताः त्वां पृच्छामि''*** धर्मके निर्णय करनेमें मेरी बुद्धि काम नहीं करती, इसलिये आपसे पूछता हूँ।

भगवान् कहते हैं कि जिसका निर्णय तू नहीं कर सकता, वह मेरेपर छोड़ दे। अर्जुन धर्मका निर्णय नहीं कर सकता था कि युद्ध करूँ या न करूँ। तो भगवान् कहते हैं कि यदि तुझे पता नहीं है तो इस दुविधामें मत पड़। इन सबको छोड़कर एक मेरे शरण हो जा। मैं तेरेको सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त कर दूँगा। तू चिन्ता मत कर। तो इसमें सब तरहके आश्रयका त्याग कर देना है। किसीका आश्रय नहीं रखना है। मनमें किसी अन्यका भरोसा और आश्रय सब छोड़ दे। अनन्यभावसे भगवान्‌के शरण हो जाय। साधन

****

और साध्य इसीको माने। यह शरणागतिकी सबसे गोपनीय और सबसे बढ़िया बात भगवान्‌ने कही।

इसमें एक बहुत विशेष रहस्यकी बात है—*''अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः''* मैं तुझे सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त कर दूँगा, तू चिन्ता मत कर। यह बहुत विलक्षण बात कही। इसका यह तात्पर्य नहीं है कि तू शरण हो जायगा तो तेरा पाप मैं नष्ट करूँगा। अर्जुनको लोभ दिया गया हो, ऐसी बात नहीं है। तू अनन्यभावसे शरण हो जा, धर्मकी परवाह मत कर, धर्मके त्यागसे होनेवाले पापका ठेका मेरेपर आ गया। गीतामें कहा है *''नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते''* (२। ४०) निष्कामभावसे जो कर्म करता है उसका उलटा फल नहीं होता। अधर्म होता ही नहीं। तू केवल मेरी शरण हो जा। इसके बाद कोई चिन्ता मत कर। शरण होनेके बाद मनमें कोई चिन्ता भी हो जाय, किसी तरहकी विपरीत भावना भी पैदा हो जाय, मन भी परमात्मामें न लगे, संसारके पदार्थोंमें राग-द्वेष भी हो जाय, तत्परता और निष्ठा न दिखायी दे—इस तरहकी कमियाँ मालूम देवें तो उन कमियोंके लिये तू चिन्ता मत कर। भगवान्‌की शरण होनेपर उसको किसी तरहकी चिन्ता नहीं करनी चाहिये। निश्चिन्त हो जाना चाहिये। निर्भय और निःशोक होना चाहिये। निःशंक होना चाहिये। लोकमें क्या दशा होगी, परलोकमें क्या होगा, यहाँ यश होगा कि अपयश होगा, निन्दा होगी कि स्तुति होगी, ठीक होगा कि बेठीक होगा, लाभ होगा कि हानि होगी, लोग आदर करेंगे या निरादर करेंगे—इन बातोंकी तरफ खयाल ही मत कर। केवल अनन्य शरण हो जा और सब आश्रय छोड़ दे। तू भय मत कर। शोक भी मत कर और शंका भी मत कर। जो वस्तु

चली गयी उसका शोक होता है और विचारमें बात आती है तो शंका होती है। शोकका भी त्याग कर दे। ***'मा शुचः'*** का तात्पर्य है कि तू किसी तरहका किंचिन्मात्र भी सोच मत कर।

मैं तो भगवान्‌के शरण हो गया। जैसे कन्यादान करनेपर लड़की समझ लेती है मेरा तो विवाह हो गया। बस एकसे सम्बन्ध हो गया। अब उम्रभर यह अटल अखण्ड सम्बन्ध है। इस सम्बन्धके बाद चाहे पति रहे, न रहे, वह आदर करे, अनादर करे, छोड़ दे, संन्यासी हो जाय। हमारी भारतकी नारी ऐसी है कि जिस एकको स्वीकार कर लिया, तो कर लिया। इसीका दृष्टान्त संतोंने दिया है कि "**पतिव्रता रहे पतिके पासा। यूं साहिबके ढिग रहे दासा।**" दास भगवान्‌के पास ऐसे रहे जैसे पतिव्रता रहती है। उसके एक ही मालिक; एक ही तरफ उसका विचार रहता है। उसकी राजीमें राजी। उसकी सेवा करना।

एकइ धर्म एक ब्रत नेमा। कायँ बचन मन पति पद प्रेमा॥

(मानस ३।४।६)

उसका एक ही धर्म है, एक ही व्रत है, एक ही नियम है—शरीर, मन, वाणीसे केवल पतिके चरणोंमें प्रेम। इसी तरह भगवान्‌की शरण होना। एक ही व्रत कि मैं भगवान्‌का हूँ। भगवान्‌का धर्म, भगवान्‌की आज्ञा, भगवान्‌की अनुकूलता—वही धर्म है। केवल भगवान्‌का ही मैं हूँ और किसीका नहीं। और किसीका नहीं हूँ—इसका तात्पर्य क्या है ? किसीसे किंचिन्मात्र कभी भी कुछ लेना नहीं। किसीसे किंचिन्मात्र भी कोई अभिलाषा नहीं रखनी है। जैसे पतिव्रता होती है वह घरमें सबकी सेवा करती है। सास, ससुर, देवर, जेठ, जेठानी, देवरानी, ननद आदिकी सेवा करती है। समयपर अतिथि-सत्कार भी करती है। साधुओंको

****

भी भिक्षा देती है; परन्तु अपना सम्बन्ध किसीके साथ नहीं। देवर, जेठ आदिसे सम्बन्ध है तो पतिके नातेसे ही है। स्वतन्त्र सम्बन्ध किसीसे कुछ भी नहीं। इसी तरहका व्रत ले लें कि केवल भगवान्‌से ही मेरा सम्बन्ध है और किसीसे कुछ सम्बन्ध नहीं है। नियम है तो भगवान्‌के भजनका और भगवान्‌के शरण होनेका। एक यही नियम है। ऐसे अनन्यभावसे भगवान्‌के शरण हो जाय, किसी अन्यका आश्रय न रहे।

दूसरोंकी सेवा करनेमें, काम कर देनेमें, शास्त्रके अनुसार सुख पहुँचानेमें दोष नहीं है। दोष है अपने कुछ चाहनेमें, भगवान्‌के शरण होनेपर किसीसे कभी भी किंचिन्मात्र भी चाहना न हो। **"मोर दास कहाइ नर आसा। करइ तौ कहहु कहा बिस्वासा ॥"** (मानस ७।४५।२) भगवान्‌का दास कहलवाकर किसीसे किंचिन्मात्र भी आशा रखता है तो भगवान्‌का दास कहाँ हुआ ? जिस चीजकी आशा रखता है, उसीका दास है। भगवान्‌का दास नहीं है। वह धन, सम्पत्तिका दास है, भगवान्‌को तो एक साधन मानता है। वह भगवद्भक्त नहीं है। ऐसे किसीसे किंचिन्मात्र भी कुछ नहीं चाहता। न आशा है, न भरोसा है, न बल है, न उसका किसीसे सम्बन्ध है। ऐसे केवल अनन्यभावसे मेरे शरण हो जाय और शरण होकर फिर निश्चिन्त हो जाय।

"मा शुचः" का अर्थ है किसी विषयकी चिन्ता मत कर। किसी बातकी कोई चिन्ता आ जाय तो कह दे कि भाई ! मैं चिन्ता नहीं करूँगा। तो चिन्ता मिट जायगी। दृढ़ता रहनेपर चिन्ता आ भी जायगी तो ठहरेगी नहीं। चिन्ता तभीतक आती है, जबतक आप अपनेमें कुछ बलका अभिमान रखते हैं। चिन्ता आती है तो

इसमें एक सूक्ष्म बात रहती है जैसे चिन्ता हुई कि धन नहीं है। तो इसका अर्थ होता है कि मैं धन कमा सकता हूँ, ले सकता हूँ और जब मैं धन कमा सकता हूँ तो यह अपने बलका भरोसा और अहंकार ही हुआ। शरणागतके धनके अभावका अनुभव तो हो जायगा, परन्तु चिन्ता नहीं होगी। ऐसे ही कोई रोग हो जाय तो क्या करूँ रोग दूर नहीं होता— ऐसी चिन्ता नहीं होगी। रोग होता है, वह अच्छा तो नहीं लगता, परन्तु रोग दूर नहीं होता, ऐसी चिन्ता नहीं होगी। चिन्ता तभी होती है, जब रोग दूर करनेमें अपनेपर विश्वास होता है, अपना कोई भरोसा होता है। अपनेपर भरोसा बिलकुल मत रखो। अपने बलका, विद्याका, बुद्धिका, योग्यताका, अधिकारका बल बिलकुल नहीं रखना है।

"सुने री मैंने निर्बल के बल राम।"

सर्वथा केवल भगवान्‌का ही बल है, हमारा बल कुछ नहीं है। बल रहनेसे चिन्ता होती है। यह बारीक बात है, भाई लोग ध्यान दें। जब कभी चिन्ता होती है तो इसका अर्थ यह होता है कि मैंने यह नहीं किया, वह नहीं किया, यह कर लूँगा। ऐसा कर लूँगा। उसे मैं कर लूँगा, तब चिन्ता होती है। शरण तो हो गया, पर भगवान्‌के दर्शन ही नहीं हुए। भगवान्‌के चरणोंमें प्रेम ही नहीं हुआ। मेरी तो ऐसी अनन्य गाढ़ प्रीति भी नहीं हुई। इन बातोंके न होनेका अभाव तो खटकता है, पर चिन्ता नहीं होनी चाहिये; क्योंकि यह मेरे हाथकी बात नहीं। मैं तो भगवान्‌को ही पुकारूँ। भगवान्‌का ही हूँ। अब उनकी मर्जी होगी तो प्रेम करेंगे, मर्जी होगी तब दर्शन देंगे, मर्जी होगी तब अनन्य भक्त बनायेंगे। अब वे मर्जी आवे जैसा बनायें। अपने-आपको तो दे दिया। जैसे कुम्हार मिट्टीको गीली करके रौंदता है। अब वह रौंदता है तो मर्जी

है, कुछ बनाता है तो मर्जी है, पहिले सिरपर उठाकर लाया तो मर्जी है, चक्केपर चढ़ाकर घुमाता है तो उसकी मर्जी है। मिट्टी नहीं कहती कि क्या बनाते हो ? घड़ा बनाओ, सकोरा बनाओ, मटकी बनाओ, चाहे सो बनाओ। मिट्टी अपनी कोई मर्जी नहीं रखती। इसी तरह हमें प्रेमकी कमी मालूम पड़ती है। पर यह भी मालूम न होने देना अच्छी बात है कि मेरेको क्या मतलब प्रेमसे, दर्शनसे, भक्तिसे। मैं तो भगवान्‌का हूँ—ऐसे निश्चिन्त हो जायँ। कमी मालूम देना दोष नहीं है, पर कमीकी चिन्ता करना दोष है। अपना बल कुछ नहीं है। अपने तो उसके चरणोंमें आ गये। अब उसके हैं। अब वह चाहे जन्म-मरण दे। जैसी मर्जी हो, वैसे करे। सब तरहके संकल्प-विकल्प छोड़कर केवल मेरी शरण हो जाय। तू चिन्ता कुछ भी मत कर।

भक्तके जितनी निश्चिन्तता अधिक होती है, उतना ही प्रभाव भगवान्‌की कृपाका विशेष पड़ता है और जितनी वह खुद चिन्ता कर लेता है, उतना वह प्रभावमें बाधा दे देता है। तात्पर्य, भगवान्‌के शरण होनेपर भगवान्‌की तरफसे जो कृपा आती है, उस अटूट, अखण्ड, विलक्षण, विचित्र कृपामें बाधा लग जाती है। भगवान् देखते हैं कि वह तो खुद चिन्तित है तो खुद ठीक कर लेगा, तो कृपा अटक जाती है। जितना निश्चिन्त हो सके, निर्भय हो सके, निःशोक हो सके, निःशंक हो सके, संकल्प-विकल्पसे रहित हो सके उतनी ही श्रेष्ठ शरणागति है। इसलिये कह दो कि अपनेपर कोई भार ही नहीं है। अपनेपर कोई बोझा ही नहीं है, अपनेपर कोई जिम्मेदारी ही नहीं है। अब तो सर्वथा हम भगवान्‌के हो गये।

भगवान्‌से कुछ भी चाहता है कि मेरे ऐसा हो जाय तो वह भगवान्‌से अलग रहता है। जैसे एक अरबपतिका लड़का पितासे

****

कहे कि मेरेको दस हजार रुपये मिल जायँ। इसका अर्थ होता है कि वह पितासे अलग होना चाहता है। वास्तवमें करोड़ों, अरबों मेरे ही तो हैं। मेरेको कुछ नहीं लेना है। लेनेकी इच्छा होती है तो वह भगवान्‌से अलग कर देती है, भगवान्‌की आती हुई कृपामें आड़ लगा देती है। जैसे बिल्लीका बच्चा होता है, उसे अपना खयाल ही नहीं रहता कि कहाँ जाना है, क्या करना है। वह तो अपनी माँपर निर्भर रहता है। बिल्ली उसे पकड़ लेती है तो बच्चा अपने पंजे सिकोड़ लेता है। कुछ भी बल नहीं करता। अब जहाँ मर्जी हो वहाँ रख दे, चाहे जहाँ ले जाय, उस बिल्लीकी मर्जी। ऐसे ही भगवान्‌का भक्त उनकी तरफ देखता है। उनके विधानमें प्रसन्न रहता है। उसे सुख-दुःख, सम्पत्ति-विपत्ति, संयोग-वियोग, आदर-निरादर, प्रशंसा-निन्दासे कोई सरोकार ही नहीं। अपनी तरफसे कोई चिन्ता नहीं, विचार आ जाय तो भगवान्‌को पुकारे, "हे नाथ ! मैं क्या करूँ ?" इस तरह चिन्ता छोड़कर उनके शरण हो जाय।

प्रश्न—शरणागतका जीवन कैसा होता है ?

उत्तर—गीताके अनुसार कर्त्तव्य-कर्मका त्याग नहीं करना चाहिये, अपितु सम्पूर्ण धर्मोंको अर्थात् कर्मोंको भगवान्‌के अर्पण करना ही सर्वश्रेष्ठ धर्म है। जब सम्पूर्ण कर्म भगवान्‌के समर्पण करके भगवान्‌के ही शरण होना है तो फिर अपने लिये धर्मके निर्णयकी जरूरत ही नहीं रही।

मैं भगवान्‌का हूँ और भगवान् मेरे हैं—इस अपनेपनके समान योग्यता, पात्रता, अधिकार आदि कोई भी नहीं है, यह सम्पूर्ण साधनोंका सार है। इसलिये शरणागतको अपनी वृत्तियों आदिकी तरफ न देखकर भगवान्‌के अपनेपनकी तरफ ही देखते रहना चाहिये।

भगवान् कहते हैं—मेरे शरण होकर तू चिन्ता करता है, यह मेरे प्रति अपराध है, शरणागतिमें कलंक है और इसमें तेरा अभिमान है। मेरे शरण होकर मेरा विश्वास व भरोसा न रखना—यही मेरे प्रति अपराध है और अपने दोषोंकी चिन्ता करना तथा मिटानेमें अपना बल मानना—यह तेरा अभिमान है। इनको तू छोड़ दे। तेरे आचरण, वृत्तियाँ, भाव शुद्ध नहीं हुए हैं, दुर्भाव पैदा हो जाते हैं और समयपर दुष्कर्म भी हो जाते हैं तो भी तू इनकी चिन्ता मत कर। इन दोषोंकी चिन्ता मैं करूँगा।

भगवान् जो कुछ विधान करते हैं, वह संसारके सम्पूर्ण प्राणियोंके कल्याणके लिये ही करते हैं। बस, शरणागतकी इस तरफ दृष्टि हो जाय तो फिर उसके लिये कुछ करना बाकी नहीं रहता।

जो मनुष्य सच्चे हृदयसे प्रभुकी शरणागतिको स्वीकार कर लेता है तो उसका यह शरण-भाव स्वतः ही दृढ़ होता चला जाता है।

भगवान् भक्तके अपनेपनको ही देखते हैं, उसके गुण-अवगुणोंको नहीं देखते अर्थात् भगवान्‌को भक्तके दोष दीखते ही नहीं।

शरणागत भक्त—"मैं भगवान्‌का हूँ और मेरे भगवान् हैं" इस भावको दृढ़तासे पकड़ लेता है तो उसकी चिन्ता, भय, शोक, शंका आदि दोषोंकी जड़ कट जाती है, अर्थात् दोषोंका आधार कट जाता है। क्योंकि सभी दोष भगवान्‌की विमुखतापर ही टिके हुए रहते हैं।

भगवान्‌के शरण होकर ऐसी परीक्षा न करें कि जब मैं शरण हो गया हूँ, तो ऐसे लक्षण मेरेमें नहीं हैं तो मैं भगवान्‌के शरण

कहाँ हुआ ?

इस प्रकार सन्देह, परीक्षा और विपरीत भावना—इन तीनोंका न होना ही भगवान्‌के सम्बन्धको दृढ़तासे पकड़ना है। शरणागत भक्तमें तो ये तीनों ही बातें आरम्भमें ही मिट जाती हैं।

मनुष्य जब भगवान्‌के शरण हो जाता है, तो वह प्राणियोंसे, सम्पूर्ण विघ्न-बाधाओंसे निर्भय हो जाता है। उसको कोई भी भयभीत नहीं कर सकता। उसका कोई भी कुछ बिगाड़ नहीं सकता।

जीवका उद्धार केवल भगवत्कृपासे ही होता है। साधन करनेमें तो साधक निमित्तमात्र होता है; परन्तु साधनकी सिद्धिमें भगवत्कृपा ही मुख्य है। इस दृष्टिसे भगवान्‌के साथ किसी तरहका सम्बन्ध जोड़ लिया जाय, वह जीवका कल्याण करनेवाला है। जिन्होंने किसी प्रकार भी भगवान्‌से सम्बन्ध नहीं जोड़ा, उदासीन ही रहे, वे तो भगवान्‌की प्राप्तिसे वञ्चित ही रह गये।

भगवान्‌का अनन्त ऐश्वर्य है, माधुर्य है, सौन्दर्य है, भगवान्‌की अनेक विभूतियाँ हैं, इन सबकी तरफ शरणागत भक्त देखता ही नहीं। वह तो केवल भगवान्‌के शरण हो जाता है और उसका केवल एक भाव रहता है कि मैं केवल भगवान्‌के शरण हूँ और केवल भगवान् मेरे हैं। शरणागतकी दृष्टि तो केवल भगवान्‌पर ही रहनी चाहिये, भगवान्‌के गुण, प्रभाव आदिपर नहीं।

प्राणी ज्यों-ज्यों दूसरा आश्रय छोड़ता जाता है, त्यों-ही-त्यों भगवान्‌का आश्रय दृढ़ होता चला जाता है और ज्यों ही भगवान्‌का आश्रय दृढ़ होता है, त्यों ही भगवत्कृपाका अनुभव

होने लगता है। जब सर्वथा ही भगवान्‌का आश्रय ले लेता है तो भगवान्‌की पूर्ण कृपा उसको प्राप्त हो जाती है।

भगवान् गीता (१८।५७) में अर्जुनसे कहते हैं कि चित्तसे सम्पूर्ण कर्मोंको मेरेमें अर्पण करके तू मेरे परायण हो जा और समताका आश्रय लेकर मेरेमें चित्तवाला हो जा। इस श्लोकमें भगवान्‌ने चार बातें बतायीं—(१) सम्पूर्ण कर्मोंको मेरे अर्पित कर दे। (२) स्वयंको मेरे अर्पित कर दे। (३) समताका आश्रय लेकर संसारका सम्बन्ध विच्छेद कर ले और (४) तू मेरे साथ अटल सम्बन्ध कर ले। शरणागतके लिये ये बातें आवश्यक हैं।

साधनकालमें जीवन-निर्वाहकी समस्या, शरीरमें रोग आदि विघ्न-बाधाएँ आती हैं परन्तु उनके आनेपर भी भगवान्‌की कृपाका सहारा रहनेसे साधक विचलित नहीं होता। उन विघ्न-बाधाओंमें भी उसको भगवान्‌की विशेष कृपा ही दीखती है।

नारायण ! नारायण ! नारायण !

——★——

मनकी चञ्चलता कैसे दूर हो ?

मनुष्यने यह समझ रखा है कि मनको कब्जेमें करना बहुत आवश्यक है। मन नहीं लगा तो कुछ नहीं हुआ। राम-राम करनेसे क्या फायदा ? मन तो लगा ही नहीं। मन लग जाय तो ठीक हो जाय। परन्तु मनका लगना या न लगना खास बात नहीं है। मनमें संसारका जो राग है, आसक्ति है, प्रियता है, यही अनर्थका हेतु है। मन लग भी जायगा तो सिद्धियोंकी प्राप्ति हो जायगी, विशेषता आ जायगी; परन्तु जबतक संसारमें आसक्ति है, कल्याण नहीं होगा। जब भीतरसे राग और आसक्ति निकल जायगी, तब जन्म-मरण छूट जायगा। दुःख होगा ही नहीं; क्योंकि राग और आसक्ति ही सब दुःखोंका कारण है।

पदार्थोंमें, भोगोंमें, व्यक्तियोंमें, वस्तुओंमें, घटनाओंमें जो राग है, मनका खिंचाव है, प्रियता है, वही दोषी है। मनकी चञ्चलता इतनी दोषी नहीं है। वह भी दोषी तो है, परन्तु लोगोंने केवल चञ्चलताको ही दोषी मान रखा है। वास्तवमें दोषी है राग, आसक्ति और प्रियता। साधकके लिये इस बातको जाननेकी बड़ी आवश्यकता है कि प्रियता ही वास्तवमें जन्म-मरण देनेवाली है।

ऊँच-नीच योनियोंमें जन्म होनेका हेतु गुणोंका संग है। आसक्ति और प्रियताकी तरफ तो खयाल ही नहीं है, पर चञ्चलताकी तरफ खयाल होता है। विशेष लक्ष्य इस बातका

****

रखना है कि वास्तवमें प्रियता बाँधनेवाली चीज है। मनकी चञ्चलता उतनी बाँधनेवाली नहीं है। चञ्चलता तो नींद आनेपर मिट जाती है, परन्तु राग उसमें रहता है। राग-(प्रियता-) को लेकर वह सोता है।

मेरेको इस बातका बड़ा भारी आश्चर्य है कि मनुष्य रागको नहीं छोड़ता! आपको रुपये बहुत अच्छे लगते हैं। आप मान-बड़ाई प्राप्त करनेके लिये दस-बीस लाख रुपये खर्च भी कर दोगे; परन्तु रुपयोंमें जो राग है, वह आप खर्च नहीं कर सकते। रुपयोंने क्या बिगाड़ा है ? रुपयोंमें जो राग है, प्रियता है, उसको निकालनेकी जरूरत है। इस तरफ लोगोंका ध्यान ही नहीं है, लक्ष्य भी नहीं है। इसलिये आप इसपर ध्यान दें। यह तो राग है, इसकी महत्ता भीतर जमी हुई है। वर्षोंसे सत्संग करते हैं, विचार भी करते हैं, परन्तु उन पुरुषोंका भी ध्यान नहीं जाता कि इतने अनर्थका कारण क्या है ? व्यवहारमें, परमार्थमें, खान-पान, लेन-देनमें सब जगह राग बहुत बड़ी बाधा है। यह हट जाय तो आपका व्यवहार भी बड़ा सुगम और सरल हो जाय। परमार्थ और व्यवहारमें भी उन्नति हो जाय।

विशेष बात यह है कि आसक्ति और राग खराब हैं। ऐसी सत्संगकी बातें सुन लोगे, याद कर लोगे, पर रागके त्यागके बिना उन्नति नहीं होगी। तो प्रश्न आपने किया कि मनकी चञ्चलता कैसे दूर हो ? पर मूल प्रश्न यह होना चाहिये कि राग और प्रियताका नाश कैसे हो ? भगवान्‌ने गीतामें इस रागको पाँच जगह बताया है।

"इन्द्रियस्येन्द्रियस्यार्थे रागद्वेषौ व्यवस्थितौ।"

(३।३४)

स्वयंमें, बुद्धिमें, मनमें, इन्द्रियोंमें और पदार्थोंमें—यह पाँच जगह राग बैठा है। पाँच जगहमें भी गहरी रीतिसे देखा जाय तो मालूम होगा कि "स्वयम्" में जो राग है, वही शेष चारमें स्थित है। अगर "स्वयम्" का राग मिट जाय तो आप निहाल हो जाओगे। चित्त चाहे चञ्चल है, परन्तु रागके स्थानपर भगवान्में प्रेम हो जाय तो रागका खाता ही उठ जायगा। भगवान्में आकर्षण होते ही राग खत्म हो जायगा।

भगवान्से प्रेम हो, इसकी बड़ी महिमा है, इसकी महिमा ज्ञान और मोक्षसे भी अधिक कहें तो अत्युक्ति नहीं। इस प्रेमकी बड़ी अलौकिक महिमा है। इससे बढ़कर कोई तत्त्व है ही नहीं। ज्ञानसे भी प्रेम बढ़कर है। उस प्रेमके समान दूसरा कुछ नहीं है। भगवान्में प्रेम हो जाय तो सब ठीक हो जाय।

वह प्रेम कैसे हो ? संसारसे राग हटनेसे भगवान्में प्रेम हो जाय। राग कैसे हटे ? भगवान्में प्रेम होनेसे दोनों ही बातें हैं—राग हटाते जाओ और भगवान्से प्रेम बढ़ाते जाओ। पहले क्या करें ? भगवान्में प्रेम बढ़ाओ। जैसे रामायणका पाठ होता है। अगर मन लगाकर और अर्थको समझकर पाठ किया जाय तो मन बहुत शुद्ध होता है। राग मिटता है। भगवान्की कथा प्रेमसे सुननेसे भीतरका राग स्वतः ही मिटता है और प्रेम जागृत होता है। उसमें एक बड़ा विलक्षण रस भरा हुआ है। पाठका साधारण अभ्यास होनेसे तो आदमी उकता सकता है, परन्तु जहाँ

रस मिलने लगता है, वहाँ आदमी उकताता नहीं। इसमें एक विलक्षण रस भरा है— प्रेम। आप पाठ करके देखो। उसमें मन लगाओ। भक्तोंके चरित्र पढ़ो, उससे बड़ा लाभ होता है, क्योंकि वह हृदयमें प्रवेश करता है। जब प्रेम प्रवेश करेगा तो राग मिटेगा, कामना मिटेगी। उनके मिटनेसे निहाल हो जाओगे। यह विचारपूर्वक भी मिटता है, पर विचारसे भी विशेष काम देता है प्रेम। प्रेम कैसे हो ?

जो संत, ईश्वर भक्त जीवन मुक्त हो गये।
उनकी कथाएँ गा सदा मन को शुद्ध करनेके लिये॥

मनकी शुद्धिकी आवश्यकता बहुत ज्यादा है। मनकी चञ्चलताकी अपेक्षा अशुद्धि मिटानेकी बहुत ज्यादा जरूरत है। मन शुद्ध हो जायगा तो चञ्चलता मिटना बहुत सुगम हो जायगा। निर्मल होनेपर मनको चाहे कहींपर लगा दो।

कपट, छल, छिद्र भगवान्‌को सुहाते नहीं। परन्तु इनसे आप डरते ही नहीं। झूठ बोलनेसे, कपट करनेसे, धोखा देनेसे—इनसे तो बाज आते ही नहीं। इनको तो जान-जानकर करते हो। तो मन कैसे लगे ? बीमारी तो आप अपनी तरफसे बढ़ा रहे हो। इसमें जितनी आसक्ति है, प्रियता है, वह बहुत खतरनाक है विचार करके देखो। आसक्ति बहुत गहरी बैठी हुई है। भीतर पदार्थोंका महत्त्व बहुत बैठा हुआ है। यह बड़ी भारी बाधक है। इसे दूर करनेके लिये सत्संग और सत्-शास्त्रोंका अध्ययन करना चाहिये, जिससे बहुत आश्चर्यजनक लाभ होता है।

मन कैसे स्थिर हो ? मनको स्थिर करनेके लिये बहुत सरल

युक्ति बताता हूँ। आप मनसे भगवान्‌का नाम लें और मनसे ही गणना रखें। राम-राम-राम—ऐसे रामका नाम लें। एक राम, दो राम, तीन राम, चार राम, पाँच राम। न तो एक-दो-तीन बोलें, न अँगुलियोंपर रखें, न मालापर रखें। मनसे ही तो नाम लें और मनसे ही गणना करें। करके देखो मन लगे बिना यह होगा नहीं और होगा तो मन लग ही जायगा।

एकदम सरल युक्ति है—मनसे ही तो नाम लो, मनसे ही गिनती करो और फिर तीसरी बार देखो तो उसको लिखा हुआ देखो। "राम" ऐसा सुनहरा चमकता हुआ नाम लिखा हुआ दीखे। ऐसा करनेसे मन कहीं जायगा नहीं और जायगा तो यह क्रिया होगी नहीं। इतनी पक्की बात है। कोई भाई करके देख लो। सुगमतासे मन लग जायगा। कठिनता पड़ेगी तो यह क्रम छूट जायगा। न नाम ले सकोगे, न गणना कर सकोगे, न देख सकोगे। इसलिये मनकी आँखोंसे देखो, मनके कानोंसे सुनो, मनकी जबानसे बोलो। इससे मन स्थिर हो जायगा।

दूसरा उपाय यह है कि जबानसे आप एक नाम लो और मनसे दूसरा। जैसे मुँहसे नाम जपो—

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

ऐसा करते रहो। भीतर राम-राम-राम—कहकर मन लगाते रहो। देखो मन लगता है या नहीं। ऐसा सम्भव है तभी बताता हूँ। कठिन इसलिये है कि मन आपके काबूमें नहीं है। मन लगाओ, इससे मन लग जायगा।

****

तीसरा उपाय बतावें। अगर मन लगाना है तो मनसे कीर्तन करो। मनसे ही रागनीमें गाओ। मन लग जायगा। जबानसे मत बोलो। कण्ठसे कीर्तन मत करो। मनसे ही कीर्तन करो और मनकी रागनीसे भगवान्‌का नाम जपो।

पहले रागको मिटाना बहुत आवश्यक है और राग मिटता है सेवा करनेसे। उत्पन्न और नष्ट होनेवाली वस्तुओंके द्वारा किसी तरहसे सेवा हो जाय, यह भाव रखना चाहिये। पारमार्थिक मार्गमें, अविनाशीमें, भगवान्‌की कथामें अगर राग हो जाय तो प्रेम हो जायगा। भगवान्‌में, भगवान्‌के नाममें, गुणोंमें, लीलामें आसक्ति हो जाय तो बड़ा लाभ होता है। अपने स्वार्थ और अभिमानका त्याग करके सेवा करें तो भी राग मिट जाता है।

नारायण ! नारायण ! नारायण !

भगवान्‌में मन कैसे लगे ?

आप जो सम्बन्ध भगवान्‌के साथ मान लें, भगवान् भी वही सम्बन्ध माननेको तैयार हैं। आपको सरलतासे जैसा भाव आवे, वैसा ही भाव कर लो।

तू दयालु, दीन हौं, तू दानि, हौं भिखारी।
हौं प्रसिद्ध पातकी, तू पाप-पुञ्ज-हारी॥
नाथ तू अनाथ को, अनाथ कौन मोसो।
मो समान आरत नहीं, आरतिहर तोसो॥

ऐसे ही तुलसीदासजी आगे कहते हैं—

तोहिं मोहिं नाते अनेक, मानियै जो भावै।
ज्यों-त्यों तुलसी कृपालु ! चरन-सरन पावै॥

ऐसे मान लो। भगवान्‌के प्रति भाव बदल लो। भगवान्‌को भगवान् ही मान लो चाहे अपना प्यारा मान लो, जो भाव प्यारा लगे उनके साथ वही भाव मान लो। यहाँ कई वर्षों पहले व्याख्यान करते हुए मेरेसे एक भाईने प्रश्न किया—मुझे तो माँका नाम प्यारा लगता है। प्रत्येकका ही ऐसा भाव होता है कि माँ अच्छी लगती है। पालन करनेवाली होती है माँ, बूढ़े हो जायँ तबतक माँ याद आती है। माँका स्नेह होता है। स्नेहका प्रभाव ज्यादा हो जाता है। तो, मेरेसे पूछा था एक सज्जनने कि भगवान्‌को हम माँ कहकर पुकार सकते हैं क्या ?

भगवान्‌में स्त्री-पुरुषका बिलकुल भेद है ही नहीं। माँ कहोगे तो माँ-रूपमें आ जायेंगे भगवान्। प्रबोध-सुधाकर पुस्तकमें श्रीशंकराचार्यजी महाराज-(वेदान्तके आचार्य-)ने, ***"मातः कृष्णाऽभिधाना"*** लिखा है। वे भी कृष्णभगवान्‌को माँ कहकर पुकारते हैं। माँ कहकर पुकारो। माँ-नामसे यदि स्नेह जागृत होता हो, मन लगता हो तो भगवान्‌को माँ कहो, पिता कहो, भाई कहो। जो नाम प्यारा लगे, जो सम्बन्ध प्यारा लगे। ऐसा नहीं मान सको तो राधाजीको माँ बना लो, नहीं तो कृष्ण माँ हैं मेरी। ऐसा मान लो।

पहले आरम्भ-आरम्भमें ही सम्बन्ध जोड़नेमें मन जगह-जगह जाता है। उद्देश्य एक बना लें। लक्ष्य एक बना लें। बस, फिर बादमें जगह-जगह मन नहीं जायगा, फिर एकमें ही मन रहेगा। जैसे लड़का हो या लड़की। आप उसका सम्बन्ध करते हो, लड़केका सम्बन्ध करते हो तो अनेक लड़कियोंकी बातें करो तो छोरा सुनेगा। लड़कीका सम्बन्ध आप करते हो, अपनी स्त्रीसे बातें करते हो कि देखो वहाँ ऐसा लड़का है, इतना पढ़ा-लिखा है। इस प्रकारकी बातें करोगे—तो लड़की सुनेगी। ऐसी बातें लड़की कबतक सुनती है ? जबतक उसका सम्बन्ध पक्का नहीं हो जाता। आप सम्बन्ध पक्का कर दें, अमुकके साथ बात पक्की हुई। उसके बाद (सम्बन्ध पक्का होनेके बाद) छोरी केवल उसकी बात सुनेगी। दूसरेकी बात इस प्रकारसे नहीं सुनेगी। सुनेगी तो परवाह नहीं करेगी। ऐसे ही लड़केका यदि किसीके साथ सम्बन्ध पक्का हो गया तो लड़का सम्बन्धवाली उस लड़कीकी ही बात

सुनेगा कि कैसी योग्यता है ? कैसी बात है ? लड़की भी छिप-छिपकर सुनती है। यह क्या है ? सम्बन्ध हो गया न अब। सम्बन्ध न होता, तो इस प्रकार नहीं सुनती। बहुत-सी बातें होती हैं, पर नहीं सुनते। तो हम भगवान्‌की बातें क्यों नहीं सुनते हैं, क्योंकि सम्बन्ध जोड़ा नहीं। जब सम्बन्ध भगवान्‌के साथ जोड़ लेंगे तो उनकी बातें ही सुनेंगे। बादमें तरह-तरहकी बातें कौन सुनेगा ? बताओ ! सुने तो असर नहीं होगा। उसी रीतिसे दूसरी बातें नहीं सुनते जिस रीतिसे लड़की दूसरे लड़कोंकी बातें नहीं सुनती। केवल सम्बन्धवाले लड़केकी बात सुनती है देखा नहीं, पहले सुना नहीं। बस माँ-बापने सम्बन्ध कर दिया कि हमने अमुकको लड़की दी। इसी प्रकार भगवान्‌से सम्बन्ध जोड़ लेना है। हमें तो भगवत्प्राप्ति करना है फिर भगवान्‌की बात अच्छी लगेगी। स्वतः ही, स्वाभाविक ही। फिर मन और कहीं क्यों जायगा ? कहाँ जायगा ? हमें मतलब ही नहीं है दूसरेसे भाई !

हमें क्या काम दुनियासे हमें श्रीकृष्ण प्यारे हैं।
यशोदा नन्दके नन्दन मेरे आँखोंके तारे हैं॥

हमें क्या मतलब ? दुनियासे क्या लेना-देना ? न लेना है, न देना है। हमारे तो एक भगवान् हैं और वे ही हमारे हैं।

भगवान्‌के गुण सुनें, उनके चरित्र सुनें, उनकी महिमा सुनें। उनके परायण होवें। सुननेसे बड़ा लाभ होता है। भक्तोंके चरित्रोंसे बड़ा लाभ होता है। वह भी एक बढ़िया उपाय है। दिनमें घंटा, दो घंटा आप कहीं एकान्तमें बैठ जाओ, कमरेमें बैठ जाओ। दरवाजा कर लो बन्द। भक्तोंके चरित्र पढ़ो। जिनको पढ़ते-पढ़ते

गद्‌गद हो जाय और प्रियता आवे। उस समय पुस्तकको छोड़ दो। नाम-जप है, कीर्तन है, शुरू कर दो। भगवान्‌का चिन्तन-भजन शुरू कर दो। जब मन फिर इधर-उधर जावे और वैसी बात न रहे, तो फिर एक पन्ना पीछेसे पढ़ो। फिर पढ़ते-पढ़ते भाव आ जावे फिर छोड़ दो वहाँ। पुस्तक पढ़ना या पूरा करना है, यह मतलब नहीं। मन लगाना है। बस, वहाँ लगा दिया। उसके बाद फिर नाम-जप करते रहो। कीर्तन करते रहो। प्रार्थना करते रहो। भगवान्‌से बातें करते रहो मनमें। हमारा मन नहीं लगता महाराज! मैं क्या करूँ? आप कब दर्शन दोगे? आपके चरणोंमें कब प्रेम होगा? ऐसे एक पुस्तक निकली है गीताप्रेससे ''ध्यानावस्थामें प्रभुसे वार्तालाप''। उस पुस्तकके अनुसार करो, बड़ा लाभ होगा। चलते-फिरते भगवान्‌से बात करना शुरू कर दो। मनसे प्रश्न पूछो तो मनसे उत्तर मिले। जो स्फुरणा हो जाय फिर भगवान्‌से पूछो— सुगमतासे मन लग जायगा। इसी प्रकार विनयपत्रिका ले ली अथवा कोई स्तुति ले ली। स्तुति करते-करते मन लग जाय तब चिन्तन करना, नाम-जप करना शुरू कर दो। जब छूट जाय तो फिर पढ़ना शुरू कर दो। इन बातोंमेंसे कोई बात अपनाकर आप देखें। ऐसे तो यह युक्तिसंगत जँचती है। बात यह ठीक है। ऐसे हो सकता है कि नहीं? यदि सम्भव है तो करके देखो। करके देखनेसे पता लगता है कि कहाँ-कहाँ विघ्न आते हैं? कहाँ बाधा आती है? क्यों बाधा आती है? इन बातोंका पता लगेगा।

यदि मन अधिक चञ्चल हो तो जप करते रहे, थोड़ी-थोड़ी

****

देर बाद भगवान्‌से कहता रहे कि आपके चरणोंमें मन नहीं लगता। हे भगवन्! मन नहीं लगता है। नमस्कार करे और कहता रहे। यह बड़ी सरल बात है। नाम-जप करता रहे, आधा मिनट हुआ, एक मिनट हुआ फिर कह दिया महाराज ! मन नहीं लगता। कहना— प्रार्थना हो गयी। भगवान्‌की याद आ गयी। नाम-जप हो रहा है। पाँच-सात दफे मालामें कह देवे। महाराज, मन नहीं लगता। हे नाथ ! मैं भूल जाता हूँ। हे नाथ ! मन नहीं लगता। नमस्कार करते रहो, कहते रहो। षोडश-मन्त्र ब्रह्माजीका बताया हुआ है; यह जपता रहे और प्रार्थना करता रहे। हे नाथ ! मन नहीं लगता। हे भगवान् क्या करूँ ? महाराज ! आपके चरणोंमें मन नहीं लगता। कहते रहो। उनकी कृपासे मन लगने लगेगा।

राम ! राम ! राम !

—— ★ ——

निरन्तर भगवत्स्मृति कैसे हो ?

श्रीमद्भगवद्गीतामें भगवान्‌ने कहा है—

तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च।

(८।७)

इसलिये सब समय तू निरन्तर मेरा ही स्मरण कर और युद्ध (कर्त्तव्य-कर्म) भी कर। भगवान्‌का स्मरण सब समय हो सकता है, किन्तु युद्ध सब समय नहीं हो सकता, अर्जुनके सम्मुख युद्धरूपी कर्त्तव्य ही था। अन्य लोगोंके सामने अपने-अपने घरोंके काम हैं। युद्धकी तरह घरोंके काम-धन्धे भी सभी समय नहीं हो सकते। इस प्रकार भगवान्‌का स्मरण करते हुए काम करना, काम करते हुए भगवान्‌का स्मरण करना एवं भगवान्‌का ही काम करना। इन तीन विकल्पोंमें भगवत्स्मरण ही प्रमुख है, कार्य गौण है। दूसरे विकल्पमें कार्य ही प्रमुख है और भगवत्स्मरण गौण है और तीसरे विकल्पमें भगवान्‌के प्रति अनन्यभाव है।

प्रायः लोग काम करते हुए भगवान्‌को भूल जाते हैं। इसमें स्वयंकी असावधानी तो खास कारण है ही, परन्तु साथमें एक भारी भूल भी है। यह एक सिद्धान्त है कि जिसके प्रति ममता होती है, उसका स्वतः ही स्मरण होता है। लोग काम-धन्धोंको अपना मानते हैं, उनके प्रति ममता रखते हैं, अतः काम-धन्धे ही याद आते हैं, भगवान् नहीं। भगवान् याद आते भी हैं, तो कुछ समयके बाद उन्हें फिर भूल जाते हैं। अतः यह दृढ़ निश्चय कर

लेना चाहिये कि हमें घरका काम करना ही नहीं है। काम तो भगवान्‌का ही करना है। "**अंजन कहा आँख जेहिं फूटे**" जिस अंजनसे आँख फूट जाय, वह अंजन कैसा? उससे हमें क्या मतलब? घरका काम करते हुए भगवान्‌को भूल जाय तो ऐसे कामसे क्या लेना? अतः साधकको यह मान लेना चाहिये कि घर हमारा नहीं, काम हमारा नहीं और हम भी हमारे नहीं। घर भी भगवान्‌का, काम भी भगवान्‌का और हम भी भगवान्‌के हैं। भगवान्‌की शक्तिसे ही भगवान्‌की प्रसन्नताके लिये हम भगवान्‌का ही काम कर रहे हैं—इस प्रकार दृढ़ भावनासे भगवान्‌के प्रति ममत्व पैदा हो जायगा और फिर भगवान्‌का स्मरण स्वतः ही होने लगेगा। स्मरणके लिये प्रयासकी कोई आवश्यकता नहीं रहेगी। किन्तु जबतक घर आदिको अपना मानते रहेंगे, तबतक स्मरणमें भूल होगी ही। जैसे हम किसी धर्मशालामें ठहरते हैं तो यह बात जँच जाती है कि यह धर्मशाला हमारी नहीं है। इसी प्रकार घरमें रहते हुए यह बात जँच जानी चाहिये कि यह घर हमारा नहीं है, यहाँ तो थोड़े समयके लिये हम रहने आये हैं। इस बातको बहुत ही दृढ़तापूर्वक पकड़ लेना चाहिये कि यह घर मेरा नहीं, धनादि पदार्थ मेरे नहीं, परिवार मेरा नहीं, शरीर मेरा नहीं। ये तो थोड़े समयके लिये मिले हुए हैं। समय पूरा होते ही इनसे वियोग हो जायगा। यदि ये मेरे होते तो सदा मेरे साथ रहते; किन्तु इनपर न तो कोई अधिकार ही चलता है, न इनमें हम इच्छानुसार परिवर्तन ही कर सकते हैं और न इनको मरने, नष्ट होनेसे बचा ही सकते हैं। तो ये पदार्थ आदि मेरे कैसे हो गये? किसी भी युक्तिसे इनके साथ "मेरापन" सिद्ध नहीं होता। अतः ये मेरे नहीं हैं, नहीं हैं, नहीं हैं।

मेरे तो एकमात्र भगवान् ही हैं; क्योंकि भगवान् पहले भी मेरे थे, अब भी हैं और आगे भी रहेंगे। सांसारिक पदार्थ पहले भी मेरे नहीं थे, आगे रहेंगे नहीं और वर्तमानमें भी इनसे निरन्तर ही वियोग हो रहा है। संसारके साथ कभी संयोग है ही नहीं और भगवान्के साथ कभी वियोग है ही नहीं।

भगवत्प्राप्तिकी इच्छा कभी भी मिटती नहीं। मनुष्य चाहे इस बातको माने या न माने; किन्तु उसके हृदयमें यह कामना अवश्य रहती है कि मैं सदाके लिये पूर्ण सुखी हो जाऊँ। सभी बन्धनोंसे मुक्त हो जाऊँ, मेरे पास कभी दुःख न आये। यही भगवत्प्राप्तिकी इच्छा है। यह इच्छा अवश्यमेव पूरी होती है, क्योंकि यह वास्तविक एवं सच्ची इच्छा है।

संसारकी इच्छा बिलकुल नकली है। यह इच्छा बनती और मिटती रहती है, किन्तु कभी पूरी नहीं होती। लोगोंने मिथ्या धारणा कर रखी है कि संसारकी इच्छा मिटती नहीं, परन्तु वास्तविक बात यह है कि यह इच्छा टिकती नहीं, बदलती रहती है। बचपनमें कोई और इच्छा थी, जवानीमें कोई और हो जाती है एवं वृद्धावस्थामें तो इच्छाका रूप ही बदल जाता है। संसार स्वयं परिवर्तनशील है। अतः संसारकी इच्छा भी परिवर्तनशील ही है। शरीर भी परिवर्तनशील ही है। अतः संसारकी इच्छा शरीरकी ही इच्छा है, व्यक्तिकी स्वयंकी इच्छा नहीं है। स्वयं (जीव) अपरिवर्तनशील है, परमात्मा भी अपरिवर्तनशील है एवं परमात्माकी इच्छा भी अपरिवर्तनशील है। इसलिये परमात्म-प्राप्तिकी इच्छा ही स्वयंकी इच्छा है। सांसारिक पदार्थ शरीरको ही प्राप्त हो सकते हैं स्वयंको नहीं। स्वयंको तो परमात्मा ही प्राप्त हो सकते हैं; क्योंकि संसार, सांसारिक पदार्थ एवं शरीरकी जातीय

एकता है। इसी प्रकार परमात्मा एवं स्वयं (जीव) की जातीय एकता है, सम्बन्ध सजातीयका ही होता है, विजातीयका नहीं। संसारके अंशको संसारकी इच्छा है एवं परमात्माके अंशको परमात्माकी इच्छा है।

संसारका काम, घर-परिवारका काम भी, शरीर, मन, इन्द्रियाँ आदिका ही काम है, हमारा काम नहीं है। हमारा काम तो भगवान्‌का भजन करना एवं भगवान् और उनके तत्त्वको प्राप्त करनेका ही है। हमें एकमात्र भगवान्‌की ही आवश्यकता है एवं भगवत्प्राप्तिकी इच्छा ही हमारी वास्तविक इच्छा है। संसारका काम तो पराया काम है।

उपर्युक्त विवेचनसे यह सिद्ध हुआ कि जीवका परमात्माके साथ ही स्वतःसिद्ध नित्य सम्बन्ध है। परन्तु अज्ञानवश संसारको एवं संसारके कामको अपना मान लेनेके कारण ही जीव कार्य करते समय भगवान्‌को भूल जाता है। जीव यदि दृढ़तापूर्वक भगवान्‌के साथ अपने नित्य, सत्य, शाश्वत सम्बन्धको स्वीकार कर केवल उन्हें अपना मान ले एवं भगवत्प्राप्तिके अतिरिक्त किसी भी कार्यको अपना कार्य न माने तो वह भगवान्‌को कभी भूल ही नहीं सकता। संसारकी इच्छा करने एवं संसारके साथ सम्बन्ध माननेके कारण ही भगवत्प्राप्तिमें भूल होती है। अतः अपने वास्तविक सम्बन्ध एवं कार्यको पहिचानना चाहिये।

प्रश्न—निरन्तर भगवत्स्मरणके लिये नाम-जपकी आवश्यकता है क्या?

उत्तर—कलियुगमें नाम सर्वोपरि साधन है। नाम-जपसे सब काम स्वतः ही ठीक बन जाते हैं। "**नामु राम को कलपतरु कलि कल्यान निवासु॥**" (मानस १। २६) रामजीका नाम-

रूपी कल्पतरु कलियुगमें बहुत कल्याण करता है। कल्पतरुसे जो चाहे सो ले लो। निरन्तर नाम-जप करनेसे इसमें रस आने लगता है। मिठाई खानेवाला ही रसको जानता है। ऐसे ही नामको लेनेवाला ही नामके रसको जान सकता है।

नाम-जपसे अत्यधिक लाभ होता है। नाम-जपसे विषय-वासना दूर होती है; पाप नष्ट होते हैं; विकार दूर होते हैं; शान्ति मिलती है और भक्ति बढ़ती है। नाम-जपसे असम्भव भी सम्भव हो सकता है। जब मनमें चिन्ता आवे तो आधा घंटा, एक घंटा नाम जपो, चिन्ता मिट जायगी। नाम-जप करनेवाले सज्जन साममय हो जाते हैं।

नाम-जप तो असली धन है जो साथ जाता है। इसलिये कहा है—**''धनवन्ता सोई जानिये जाके राम नाम धन होय।''** नामकी कीमत कोई आँक नहीं सकता। यह अमूल्य रत्न है। **''पायो री मैंने राम रतन धन पायो।''** नामको सगुण और निर्गुणसे भी बड़ा बताया है।

कहौं कहाँ लगि नाम बड़ाई।
रामु न सकहिं नाम गुन गाई॥

(मानस १।२५।४)

नामके गुण तो स्वयं भगवान् भी गाना चाहें तो नहीं गा सकते। नामकी महिमा अपार है, असीम है और अनन्त है।

प्रश्न—नाम-जपकी खास विधि क्या है ?

उत्तर—भगवान्‌के स्वरूपका ध्यान करते हुए, अर्थको समझते हुए, भगवान्‌के होकर नामका जप करें। नाम-जप गुप्तरूपसे और निष्काम भावसे करें। नाम-जप निरन्तर करते रहें। नामको भूल न जायें, इसके लिये एक उपाय है। मन-ही-मन

भगवान्‌को प्रणाम करके उनसे प्रार्थना करें कि हे नाथ! मैं आपको भूलूँ नहीं, हे प्रभो! आपको मैं भूलूँ नहीं। ऐसा थोड़ी-थोड़ी देरमें कहते रहें।

एक बात और है, उसपर ध्यान दें। जब कभी आपको भगवान् अचानक याद आ जायँ या भगवान्‌का नाम अचानक याद आ जाय उस समय समझो कि भगवान् मेरेको याद करते हैं। ऐसा समझकर प्रसन्न हो जाओ कि मैं निहाल हो गया; मेरेको भगवान्‌ने याद कर लिया। अब और काम पीछे करेंगे— उस समय नाम-जप व कीर्तनमें लग जाओ। ऐसा करनेसे भक्ति बहुत ज्यादा बढ़ती है।

मालासे जप करना लाभदायक है। भगवान्‌को याद करनेके लिये माला एक शस्त्र है। माला फेरनी चाहिये। जितना नियम है उतना जप मालासे पूरा हो जाता है। उसमें कमी न आ जाय इसलिये मालाकी आवश्यकता है। बिना मालाके अगर निरन्तर जप होता है तो मालाकी कोई जरूरत नहीं है।

नारायण ! नारायण ! नारायण !

★

जीवनकी चेतावनी

गीताजीमें दो बातें भगवान्ने अपनी ओरसे विशेषतासे कही हैं—

१. साधनके विषयमें। २. अन्तकालके विषयमें। मनुष्यका जीवन भगवन्मय होना चाहिये, भगवान्की साधनामें लगना चाहिये और अन्तमें भगवान्की स्मृति होनी चाहिये। इन दो विषयोंमें भगवान्ने जितने श्लोक कहे हैं और जितना विवेचन किया है उतना और किसी विषयमें नहीं किया। अन्तमें कहते हैं—***"मामेकं शरणं व्रज"*** तू मेरी शरण हो जा, मैं सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त कर दूँगा, तू चिन्ता मत कर।

अब सज्जनो ध्यान दें। यह संसार जो अपना दीखता है यह अपने साथ नहीं रहेगा, नहीं रहेगा।

थे बड़े-बड़े महाराजे,
जिनके बजे रात दिन बाजे।
वे भी बने कालके खाजे॥
मिले नहीं बारम्बार शरीर,
ऊमर क्यों गफलतमें खोते हो?

संसारसे क्या ले लोगे आप? धन ले लोगे, सुख ले लोगे? ले कुछ सकोगे नहीं। धोखा होगा, धोखा! संसारसे किसी एकको भी पूर्ण सुख मिला है क्या? मिलेगा भी नहीं, क्योंकि ये तो नाशवान् हैं और भगवान् हैं अविनाशी। ये शरीर,

संसार सभी यहीं रहनेवाले हैं। शरीरको भी दूसरे लोग उठायेंगे। यह पहलेसे विचार करना होगा, सोचना होगा कि क्या करना चाहिये ? जैसे मनुष्य घरसे निकल जाता है और पता ही नहीं कि कहाँ जाना है तो क्या दशा होती है ? पूछे किसीसे कि मार्ग बता दो, तो बतानेवाला पूछे कि कहाँका ? तो कहे कि कहींका बता दो। तो वह पागल समझा जायगा। एक लक्ष्य तो होना चाहिये।

भाइयो ! ध्यान देना। हमारी जीवन-यात्रा तो हमारे जन्मके समयसे ही चल पड़ी। जीवन प्रतिक्षण खत्म हो रहा है और हमें इस जीवनमें क्या करना है, अभीतक यह पता ही नहीं है। हममेंसे बहुत-से बहिन-भाइयोंको तो पता ही नहीं कि हमें किधर जाना है, हमारे जीवनका क्या लक्ष्य है। मैंने पूछकर देखा है कि बताओ आप क्या चाहते हैं ? तो कोई निर्णय नहीं है। कभी कुछ चाहते हैं। यहाँकी सब चीजें तो छूटनेवाली हैं, इसलिये प्रभुको याद करो जो नित्य-निरन्तर रहनेवाले हैं।

सज्जनो ! चेतो। दूसरोंको धोखा देकर हम कुछ ले भी लेंगे तो महान् मुश्किल होगी, कुछ नहीं मिलेगा। सब कुछ यहीं रहेगा और यमराजके दूत आ जायेंगे। वह दिन कभी भी आ सकता है; पता नहीं कब आ जाय, उसके आनेमें कोई सन्देह नहीं है। आप, हम सब कहाँ बैठे हैं, पता है ? मृत्युलोकमें हैं, मरनेवालों-के लोकमें हैं, यहाँ रहनेवाला कोई नहीं, सब मरने-ही-मरनेवाले हैं। निश्चिन्त कैसे बैठे हो ? जो काम करना है सो कर लो। अब नहीं किया तो फिर कब करोगे ? छोटे-छोटे बालक होते हैं, वे भी यह सोचते हैं कि बड़े होकर यह करेंगे। इसी प्रकार हम सोचते हैं कि बड़े होकर यह करेंगे। बाल सफेद होने लगे तो कब करोगे ? अब तो मरोगे, बस। शरीर प्रतिक्षण जा रहा है, इसमें

सन्देह नहीं है किंचिन्मात्र भी। जन्म-दिनपर खुशी मनाते हैं, अरे! रोनेका दिन है एक वर्ष बीत गया, परन्तु इसमें किया क्या? जिसमें भगवान्‌की प्राप्ति हो सकती थी, बारह महीनेकी उस उम्रको व्यर्थ गवाँ दिया। विचार करनेकी बात है। आगेके लिये सावधान होनेकी बात है कि अब जो समय बीत गया, वह तो बीत गया, अब नहीं बीतने देंगे।

"अंतहु तोहि तजेंगे पामर, तू न तजै अब ही ते।"

ये सब तो छूटनेवाले हैं, काम पड़नेपर परमात्मा ही साथ रहनेवाले हैं। प्रभु ही हमारे हैं सज्जनो! और कोई हमारा नहीं है। अतः हे नाथ, हे नाथ! पुकारो। वे प्रभु सब समयमें हैं, तो अभी भी हैं, सब जगहपर हैं तो यहाँ भी हैं और सबके हैं तो हमारे भी हैं, सबमें हैं तो हमारेमें भी हैं, वे स्वयं कहते हैं—***"सुहृदं सर्वभूतानाम्"*** प्राणिमात्रके सुहृद्—ऐसे परमात्माके रहते हुए हमारी दुर्दशा हो तो फिर क्या कहें? उनके रहते हुए हम दुःख पावें, कष्ट उठावें। तो इसमें कारण क्या है? उनसे विमुख हो गये और नाशवान् पदार्थोंके पीछे पड़े हैं कि वे मिल जायँ, भोग भोग लें, मान-सम्मान मिल जाय, मिलेगा कुछ नहीं, धोखा होगा धोखा। सब ज्यों-का-त्यों रह जायगा, साथ कुछ नहीं जावेगा। अतः उपकार करो। साथ क्या चलेगा? साथ चलेगा—स्वभाव। सेवा करनेवाला सब जगह सेवा करेगा और महान् आनन्द लूट लेगा। असली पूँजी आपकी है आपका स्वभाव।

एक दिनके लिये भी कहीं जाते हैं तो सोचते हैं कि अमुक जगह ठहरना होगा, अमुक सवारी मिलेगी। परन्तु इस संसारको एक दिन छोड़ना है, इसे छोड़कर जरूर जाना पड़ेगा, तो इसका प्रबन्ध किया है कि नहीं; यह प्रत्येक भाई-बहिनको स्वयंको

****

सोचना होगा। एक क्षणका भी पता नहीं, हार्टफेल हो जाता है, चलते-फिरते मर जाता है। फिर हम क्या फौलादके बने हुए हैं ? इसलिये स्वभावको शुद्ध बनाओ। हर एकका उपकार करो, हित करो। प्रभुको याद करो। जितने सन्त-महात्मा हुए हैं वे सब भगवान्‌को याद करनेसे ही संत-महात्मा बने हैं। भगवान्‌के नाम बिना सब खाली है, खाली। अतः उठते-बैठते, सोते-जागते, काम-धन्धा करते हुए भी और न करते हुए भी भगवान्‌को पुकारते रहो। उनसे काम पड़नेवाला है, उनको याद करते रहो। सब समय नाम-जप करते रहो और कहते रहो—राम ! राम ! राम !

नाम-जप करो। अन्तमें नाम काम आवेगा। धन, सम्पत्ति, परिवार, मकान कुछ काम नहीं आवेंगे। अभीतक जिन कामोंको करते हुए, आपको सत्संग, भजन, ध्यान, स्वाध्याय, पाठ, जप आदिके लिये समय नहीं मिलता है अन्तमें क्या होगा ? हाय ! हमने कुछ नहीं किया। यह सारा काम-धन्धा कुछ नहीं कियामें भर्ती होनेवाला है। मनुष्य कहता है कि सत्संगके लिये समय नहीं मिलता। राम ! राम ! कितनी भारी भूल ! बच्चा जन्मता है, तो बड़ा होगा कि नहीं होगा, इसमें सन्देह है। पढ़ेगा कि नहीं पढ़ेगा, इसमें सन्देह है। विवाह होगा कि नहीं होगा, इसमें सन्देह है; परन्तु मरेगा कि नहीं मरेगा, इसमें सन्देह नहीं है। मरना तो पड़ेगा ही। परन्तु जिन कामोंमें सन्देह है उन्हें तो तत्परतासे कर रहा है, परन्तु जिस काममें सन्देह नहीं, जाना तो पड़ेगा जरूर, उसके लिये कोई तैयारी ही नहीं। बड़े आश्चर्यकी बात है। यह बड़ी भारी भूल है। अतः सावधान हो जाओ।

मैं एक सच्ची बात कहता हूँ। वह यह है कि सिवाय भगवान्‌के अपना कोई नहीं है। मन, बुद्धि, इन्द्रियाँ, श्वास आदि

कोई आपके नहीं। परन्तु प्रभुको आप अपना मान लें तो प्रभु छोड़ नहीं सकते आपको। ये सब चीजें, जिनके पीछे आप पड़े हैं, आपकी बात कोई माननेवाले नहीं हैं। जिस शरीरकी आप सदा रक्षा करते हो, एक दिन रात्रिमें भूलसे कपड़ा अलग रह जाय तो जाड़ा लग जाता है। यह खयाल नहीं करता कि कितने दिन इसने रक्षा की, एक दिन मैं भी क्षमा कर दूँ, इतने वर्षोंसे अन्न-जल दिया। दो दिन अन्न-जल बन्द कर दो तो इसकी क्या दशा होती है ? यह इतना कृतघ्न है कि दो दिनमें ही पोल निकाल देता है। तो ऐसे कृतघ्न शरीरके तो बन गये गुलाम और जो भगवान् याद करनेमात्रसे दौड़ते हैं उन भगवान्‌को याद ही नहीं करते। बिना याद किये भी उन भगवान्‌ने हमें विद्या, बुद्धि, ज्ञान, शरीर, जीवन आदि सभी दिये हैं और देते ही रहते हैं। इतने विलक्षण ढंगसे देते हैं कि उनका दिया हुआ अपना ही मालूम देता है। ऐसे परम सुहृद् परमात्माको भूल गये।

सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति।

(गीता ५।२९)

परमात्मा पापी, दुराचारी, सज्जन आदि सभीके परम सुहृद् हैं। अतः उनको तो याद करो और संसारका काम करो। संसारके कामसे भी भगवान्‌को राजी करो। स्वार्थका त्याग करके सेवा करो। सब भाई-बन्धुओंकी, स्त्री-पुत्रकी, सबकी सेवा करो, सबको सुख पहुँचाओ, यह सोचकर कि ये सब भगवान्‌के हैं। इससे भगवान् बड़े राजी होंगे कि यह मेरे बच्चोंका पालन करनेवाला है। जैसे कोई एक बच्चा है जिसके माता-पिता नहीं, उसे एक माई अपने घर ले जाती है और उसका पालन-पोषण करती है, तो लोग कहते हैं कि बड़ी दयालु माई है। अपने

बच्चोंका पालन तो सभी करते हैं, कुतिया भी अपने बच्चोंका पालन करती है। अतः सबका हित करना है। चाहे तो जिनसे अपना कोई स्वार्थ न हो उनका हित कर दो या जिनकी आप सेवा करते हैं, उनसे अपना कोई सम्बन्ध न रखो। एक ही बात होगी। अतः स्वार्थ त्यागकर सबको सुख पहुँचाओ, सबका हित करो—

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत्॥

किसीको दुःख न मिले, सबको आराम मिले, सबको सुख मिले। सज्जनो! ऐसा भाव कर लो। यह मनुष्य-जन्मका खास मौका है। स्वार्थके लिये काम करना मनुष्यता नहीं है, कुत्ते आपसमें खूब खेलते हैं परन्तु रोटीका टुकड़ा देखते ही लड़ाई हो जाती है। ऐसे ही यदि स्वार्थके लिये हमलोग भी लड़ें तो उनमें और हममें क्या अन्तर हुआ? इसलिये यह भाव रखो कि सबका हित कैसे हो? ***"ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः"*** (गीता १२।४) सबके हितमें जो रत होते हैं वे परमात्माको प्राप्त होते हैं। अतः सज्जनो! संसारको अपना मानकर जो लाभ आपने उठाया है, वह तो उठा ही लिया, अब भगवान्‌को अपना मानकर देख लो। सबका हित हो, सबको आराम मिले, सबका कल्याण हो यह भाव रखो। सेवा जितनी कर सको, उतनी करो। परन्तु भावमें कमी न रखो। भीतरका भाव यह होना चाहिये कि सबके हितमें प्रीति हो, उस भावसे स्वतः त्याग होगा। भावना पहले होती है, क्रिया बादमें होती है। अतः सबके हितकी भावना हो। जो भी बड़े-बड़े महात्मा हो गये, उनमें दूसरोंके हितकी भावना थी।

उमा संत कइ इहइ बड़ाई।
मंद करत जो करइ भलाई॥ (मानस ५।४०।४)

उनके साथ कोई मन्द करे तो भी वे उसकी भलाई ही करते रहते हैं। ऐसे ही सबका भला हो जाय, सबका कल्याण हो जाय, ऐसा चिन्तन आपके मनमें होने लग जाय, तो आपका उद्धार हो जायगा। महापुरुषोंके संगसे, दर्शनसे कल्याण हो जाता है। इसका कारण क्या है ? कारण है कि एकान्तमें रहते हुए भी उन महापुरुषोंको चिन्ता रहती है कि सबका कल्याण कैसे हो जाय। उस लगनके कारण उनके दर्शनमात्रसे संसारका हित होता है। उनकी हवामात्रसे सबका कल्याण होता है।

एक मार्मिक बात है कि जैसे परमात्मा सबका हित चाहते हैं उसी प्रकार जो व्यक्ति सबका हित चाहता है उसकी परमात्माकी शक्तिके साथ एकता हो जाती है और उसके द्वारा सबका हित होता है।

अतः सज्जनो ! भाइयो ! बहिनो ! सच्चे हृदयसे सबका हित कैसे हो, सबका कल्याण कैसे हो, यह लगन लग जाय। माता-बहनें घरोंमें स्वयं काम करें और सेवा करें, दूसरोंसे नहीं करायें। यह शरीर थोड़े दिनोंके लिये मिला हैं, फिर समाप्त होनेवाला है। अतः थोड़े दिन डटकर सेवा कर लो। लाभ उठा लो। फिर यदि शरीर बीमार हो जायगा तो इसे उठाने-बैठानेके लिये भी दूसरे आदमीकी जरूरत पड़ेगी। जी गये तो यह दशा हो सकती है और नहीं तो खत्म हो जाओगे। यह सेवा असली चीज है, यह भगवान्‌को भी खरीदनेवाली है। इसलिये सेवा करो, चीज-वस्तु तो दूसरोंको दो और काम-धन्धा अपने-आप करो। देखो आपसमें प्रेम होता है कि नहीं। परिवारमें झगड़ा क्यों होता है ? इसलिये कि हम कहते हैं कि काम-धन्धा तो तू कर और चीज मैं लूँ। इससे लड़ाई होगी।

आपसमें प्रेम बढ़ानेका दूसरा उपाय है कि बड़ोंके चरणोंमें प्रणाम करे। इससे आवागमन मिट जाता है। बड़ोंके चरणोंमें नमस्कार करो। उनकी आज्ञाका पालन करो। उनकी सेवा करो। उनको कितनी प्रसन्नता होगी। जिससे आपसमें प्रेम बढ़ेगा, स्नेह बढ़ेगा, घरमें आनन्द रहेगा। धर्म, सन्त, महात्मा, परिवार, भगवान् सभी राजी हो जायेंगे। परन्तु यदि कोई गड़बड़ी करता है, खोटे रास्तेपर चलता है तो उससे माता-पिता भी नाराज हो जायेंगे। अतः सेवा, उपकार करो और भगवान्‌को याद रखो। यह संसार सदा रहनेका नहीं है, यहाँ सदा रहनेके लिये नहीं आये हैं, थोड़े दिन रहना है। जैसे कुछ दिनोंके लिये गीताभवनमें सत्संगमें आये हैं, फिर यहाँसे चल देंगे, इसी प्रकार इस संसारसे चल देना है अचानक और पता है नहीं कब चल देना है।

तुलसी सोइ नर चतुर है जो राम भजन लवलीन।
पर धन पर मन हरन को वेश्या भी परवीन॥

भगवान्‌के भजनमें जो लग गया है वही समझदार है। भगवान्‌के दरबारमें भी उसका आदर है कि उसने मनुष्य-जन्म सफल कर लिया। भगवान्‌ने कृपा करके मनुष्य-जन्म दिया कि जिससे यह अपना कल्याण कर ले। परन्तु यदि मनुष्य अपना कल्याण नहीं करते तो वे भगवान्‌को एक प्रकारसे धोखा देते हैं। इसलिये ऐसा न हो जाय। हमें मनुष्य-शरीर मिला, उत्तम कुल मिला, भगवान्‌की ओर चलनेकी रुचि मिली, सत्संग मिला, गीता, रामायण-जैसे ग्रन्थ और भगवान्‌का नाम सुननेको मिला। अब क्या बाकी रहा ? थोड़ा-सा उद्योग अपनी तरफसे करो। हाँ-में-हाँ मिलाओ। इतनेमें कल्याण होता है। भगवान्‌की कृपा मानकर नामका जाप करो, सेवा करो और रात-दिन मस्त रहो कि हम तो

अन्याय करते ही नहीं, किसीको दुःख देते ही नहीं, किसीको कष्ट पहुँचाते ही नहीं, तो फिर हमें दुःख किस बातका, चिन्ता किस बातकी !

तन कर मन कर बचन कर देत न काहू दुःख।
तुलसी पातक झड़त है देखत उसके मुख॥

आप ऐसी कृपा करो कि अबसे किसीको दुःख नहीं देंगे। मनसे किसीका बुरा चिन्तन नहीं करेंगे। जिह्वासे ऐसी वाणी नहीं बोलेंगे जिससे किसीको कष्ट पहुँचे। कोई क्रिया ऐसी न करें जिससे किसीको कष्ट पहुँचे। सबको आराम पहुँचायें, सेवा करें, ऐसे सम्पूर्ण प्राणियोंके हितमें आप लगे रहो, भगवान्‌की अनन्त शक्ति, अपार शक्ति आपके साथ है। ऐसा करते ही मनुष्य-जीवन सफल हो जायगा। कलियुगकी बड़ी महिमा गायी है, क्योंकि इसमें बहुत जल्दी कल्याण होता है।

कलिजुग सम जुग आन नहिं जौं नर कर बिस्वास।
गाइ राम गुन गन बिमल भव तर बिनहिं प्रयास॥

(मानस ७। १०३)

बिना प्रयासके ही इस संसार-सागरसे तर जाता है। ऐसा सुन्दर मौका हमें मिला है। अतः हम भगवान्‌के चरणोंमें लग जायँ। अपने भगवान् हैं, भगवान्‌के अलावा कोई हमारा नहीं, हम किसीके नहीं हैं। संसारमें आये हैं तो केवल सेवा करनेके लिये आये हैं। संसारसे क्या मिलेगा ? सब सोचते हैं कि मैं अपना स्वार्थ सिद्ध कर लूँ, तो इससे स्वार्थ सिद्ध होगा नहीं। दूसरोंकी सेवा करो और जो प्रभु अपने हैं, उनको याद रखो। यह जीवन सेवा करनेके लिये मिला है। अतः न्याययुक्त, शास्त्रकी पद्धतिके अनुसार सबकी सेवा करो।

****

उद्योगपर्वमें एक कथा आती है। धृतराष्ट्र विदुरजीको बुलाते हैं और पूछते हैं कि मेरेको नींद नहीं आ रही है। तो विदुरजीने कहा कि जो सच्चे आदमियोंसे वैर करेगा और उनको कष्ट देना चाहेगा, उसे नींद नहीं आयेगी। उसे अशान्ति रहेगी ही। पाण्डवोंके साथ खराब व्यवहार करके शान्ति चाहते हो ? जिसका हृदय खराब होगा, उसे शान्ति नहीं मिलेगी। स्वार्थ सिद्ध करके जो यह सोचता है कि मैं अपना काम बना लूँ तो वह काम बना नहीं रहा है, बिगाड़ रहा है। इसमें यह जो स्वार्थ दीखता है, यह महान् पतनकी बात है। अतः इस थोड़ेसे जीवनमें जो सेवा अपनेसे बन सके, वह करें। चतुर वही है जो इस मनुष्य-शरीरको पाकर अपना काम बना ले। सेवामें लग जाय, नाम-जपमें लग जाय। सबमें रहते हुए, सबकी सेवा करते हुए, यदि यहाँसे चल दिये, तो अपने तो आनन्द हो गया, मौज हो गयी। परन्तु यदि यह ताकते रहेंगे कि मैं सुख ले लूँ तो सुख तो ले सकोगे नहीं, समय बरबाद कर दोगे। अतः अभीसे सच्चे हृदयसे भगवान्‌की तरफ लग जाओ। नाम-जप-कीर्तन करो, सेवा करो। कैसे आनन्दकी बात है ! यहाँ सदा रहना नहीं है। यहाँसे जाना पड़ेगा। राजा, महाराजा, सेठ, धनी, गरीब, भाई, बहिन, पण्डित, मूर्ख, कोई भी हो सबको यहाँसे जाना पड़ेगा।

निश्चिन्त होकर कैसे बैठे हो ? किसके भरोसे निर्भय बैठे हो ? भगवान्‌को याद करो। जो भगवान्‌के नामका जप मन लगाकर कर रहा है वह मर जाय तो आनन्द और जी जाय तो आनन्द। मरें तो भगवान्‌का स्मरण करते हुए मरें और जियें तो भजनका संग्रह करें जिससे हम मालामाल हो जायेंगे। भजन साथमें जानेवाला धन है। चोर इसे नहीं ले जा सकते, राजा इसे

नहीं ले सकता। भाई-भाईके बँटवारेमें यह नहीं जा सकता। यह सदा साथ रहनेवाली सच्ची पूँजी है। ऐसी बढ़िया पूँजी है कि इससे भगवान्‌को खरीद लो।

एक कहानी है कि एक देशमें राजा बनाया जाता था। तीन वर्ष वह राजा रहता था, सब काम उसके हुक्मसे होता था। तीन वर्ष पूरा होनेपर उसको नौकामें बैठाते, विशेष-विशेष व्यक्ति नौकाको पहुँचाने जाते और उसको भयानक जंगलमें छोड़ देते। जहाँ उसको जंगली जानवर खा जाते। जबतक वह राजा रहता, तबतक तो प्रसन्न रहता। परन्तु जिस दिन उसको विदाई देते, उस दिन रोता जाता। एक बार एक चतुर व्यक्तिके हाथमें राज्य आ गया। तो उसने खूब कार्य किये, दूसरी ओर सड़कें बनवायी, कुएँ बनवाये, मकान बनवाये, सब सुख-सुविधाएँ कर दीं। तो तीन वर्ष बादमें लोगोंने कहा कि चलो। तो बोला—चलो। वह खूब मस्त हो रहा था। लोगोंने सोचा कि यह इतना मस्त क्यों हो रहा है। उससे पूछा कि तुम हँस क्यों रहे हो ? वह बोला कि मैं तो हँसूँगा, रोवोगे तुम। मैंने सब माल उस पार कर दिया है, वे लोग मूर्ख थे जिन्होंने हाथमें अधिकार आनेपर उसका उपयोग नहीं किया। आप भी सोच सकते हैं कि यदि हमें भी तीन वर्षोंके लिये ऐसा अवसर मिले तो हम भी इसका बढ़िया उपयोग करें। हमें यह शरीर तीन वर्षों (अर्थात् कुछ वर्षों) के लिये मिला है। अतः इसमें परमात्माका नाम लो, भजन-स्मरण करो, पुण्य करो या पाप करो। शुभ करो या अशुभ करो, स्वतन्त्रता मिली है। यदि अच्छे कार्य नहीं करते तो रोते हैं कि हाय, हाय ! मैंने अच्छे कार्य नहीं किये, भजन-स्मरण नहीं किया। परन्तु यदि व्यक्ति भजन-स्मरण करता है, दान-पुण्य करता है, सबका हित करता है, सेवा करता

****

है, तो मस्तीसे, आनन्दसे मरता है। अतः धोखा मत खाओ, चेत करो, सावधान हो जाओ। यहाँ धोखा खानेके लिये नहीं आये हो। अबतक जो समय बीत गया, सो बीत गया, अब समय व्यर्थ मत गँवावो। भजन, ध्यान करो, सेवा करो। यह शरीरको सजाना, इसका शृङ्गार करना, कितने दिनों चलेगा ? कहते हैं छूटता नहीं। तो छूटेगा नहीं क्या ? विचार करो, वह दिन आनेवाला है जब यह सब छूट जायगा। जिस दिनका स्मरण करके डर लगता है, भय लगता है, वह दिन आयेगा। कब आयेगा, इसका पता नहीं, क्योंकि मौतकी कभी छुट्टी नहीं होती। मौतके लिये सब घंटा, सब मिनट, सब सेकिण्ड खुले हैं। परन्तु बैठे हैं निश्चिन्त। तो क्या करें ? भगवान्‌का भजन करें। प्रत्येक समय राम ! राम ! राम ! करें और सेवा करें। बस फिर बेड़ा पार है।

नारायण ! नारायण ! नारायण !

व्यवहारमें परमार्थ

अपने स्वार्थ व अभिमानका त्याग करके 'सबका हित कैसे हो' इस भावनासे बर्ताव करें। परिवारमें रहनेकी यह विद्या है। प्रत्येक कामको करनेका एक तरीका होता है, एक विद्या होती है, एक रीति होती है और उसमें चतुराई होती है, उसमें एक कारीगरी होती है। इसी प्रकार परिवारमें रहनेकी भी एक विद्या है। आप बेटा हो तो माँ-बापके सामने सपूत-से-सपूत बेटा बन जाओ। जिसके भाई हो तो उसके लिये आप श्रेष्ठ-से-श्रेष्ठ भाई बन जाओ। जिसके आप पति हो, उसके लिये आप श्रेष्ठ-से-श्रेष्ठ पति बन जाओ। आप पिता हो तो पुत्र-पुत्रीके लिये श्रेष्ठ-से-श्रेष्ठ पिता बन जाओ। जैसा जिसके साथ सम्बन्ध है, उससे आपका श्रेष्ठ सम्बन्ध होना चाहिये। उनके साथ उत्तम-से-उत्तम बर्ताव करोगे तो वे लोग भी आपसे अच्छा बर्ताव करेंगे। तब परिवार ठीक रहेगा। आप कह सकते हैं कि परिवारके सब लोग इस तरह सोचेंगे, तब ठीक होगा, एक आदमी क्या करेगा ? बात ठीक है; परन्तु आप अच्छा बर्ताव करना शुरू कर दो। उस अच्छे बर्तावके करनेसे परिवारका बर्ताव भी अच्छा होगा और परिवारमें बड़ी शान्ति होगी।

आप अपनी तरफसे ठीक बर्ताव करते रहो। उसमें एक और शूरवीरता ले आओ। रामायणमें आया है—

उमा संत कइ इहइ बड़ाई।
मंद करत जो करइ भलाई॥ (५।४०।४)

परिवारवाले आपके साथ खराब बर्ताव करें, आपको दुःख पहुँचावें, आपका अपयश करें, तिरस्कार करें, अपमान करें तो भी आप उनका नुकसान मत करो। उनको दुःख मत दो। उनको सुख दो, उनका आदर करो, उनकी प्रशंसा करो। उनको कैसे आराम पहुँचे—इस भावसे आप बर्ताव करोगे तो आपका परिवार आपके लिये दुःखदायी नहीं होगा। परिवारके सभी आपसमें ठीक बर्ताव करेंगे। इस जमानेमें इस बातकी बड़ी भारी आवश्यकता है।

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।

(गीता २।४७)

अपनी ओरसे आप परिवारवालोंके प्रति अपना कर्त्तव्य-पालन करो। दो चीजें हैं। एक होता है कर्त्तव्य और एक होता है अधिकार। मनुष्य अधिकार तो जमाता है, कर्त्तव्य नहीं करता। यह खास बीमारी है, जिसके कारण संसारमें और परिवारमें खटपट मचती है। वह अपना अधिकार रखना चाहता है और कर्त्तव्य-पालन करनेमें ढिलाई करता है, उपेक्षा करता है या कर्त्तव्य नहीं करता है। इसीसे गड़बड़ी होती है। इसलिये अधिकार तो जमाओ मत और कर्तव्यमें किंचिन्मात्र भी कमी लाओ मत। उनके अधिकारकी पूरी रक्षा करो। उनका जो हमारेपर हक लगता है उस हकको ठीक निभाओ। आप उसपर अधिकार मत जमाओ कि हमारा लड़का है, हमारा कहना क्यों नहीं मानता ? हमारी स्त्री कहना क्यों नहीं मानती ? भीतरमें यह अधिकार मत रखो। कहना हो तो कह दो—प्रेमसे, स्नेहसे, आदरसे, अपनेपनसे, पर भीतरसे आग्रह मत रखो कि स्त्री-पुत्र मेरे कहनेमें ही चलें।

परिवार जितना आपके कहनेमें चलेगा, उतना ही आपके

अधिक बन्धन होगा। जितना ही वह आपका कहना नहीं करेगा, उतना ही छुटकारा होगा, उतनी ही आपमें स्वतन्त्रता होगी, उतना ही आपको लाभ है। जितना वे कहना अधिक करेंगे, उतना ही आपको बन्धन होगा। मनुष्यको यह अच्छा लगता है कि दूसरे लोग मेरे अनुकूल चलें, मेरा कहना मानें। परन्तु यह बन्धन-कारक है। जहर चाहे मीठा ही हो, पर मारनेवाला होता है। इसी प्रकार अनुकूलता आपको भले ही अच्छी लगे, पर वह बाँधनेवाली है। वे उच्छृङ्खलता करें तो भी आप अच्छे-से-अच्छा बर्ताव करो। वे चाहे उम्रभर बुरा ही करें तो भी आप उकताओ मत। आपके लिये बहुत ही बढ़िया मौका है। उनके बुरा करनेपर भी आप अपना बर्ताव अच्छे-से-अच्छा करो।

एक सज्जन थे। उन्होंने कहा कि आप कुछ भी करो मेरेको गुस्सा नहीं आता। आप परीक्षा करके देख लो। दूसरेने कहा कि आपको गुस्सा नहीं आता बहुत अच्छी बात है। आपको क्रोध दिलानेके लिये मैं अपना स्वभाव क्यों बिगाड़ूँ ? तो सदैव यह भाव रहे कि हम अपना स्वभाव अच्छा रखें।

स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः।

(गीता १८।४५)

अपने कर्त्तव्यका ठीक तरह पालन करो। उसका नतीजा अपने लिये भी ठीक ही होगा। परिवारके साथ इस तरह बर्ताव करोगे तो लोक और परलोक दोनों सुधरेंगे। यहाँ भी आपका भला होगा और वहाँ भी। गीतामें कहा है ***'नायं लोकोऽस्त्ययज्ञस्य कुतोऽन्यः'*** (४।३१) जो यज्ञ नहीं करता उसका यह लोक भी ठीक नहीं होता, फिर परलोक कैसे ठीक होगा ? यहाँ ''यज्ञ'' का अर्थ कर्त्तव्य-पालन है। अपने कर्त्तव्यका पालन

नहीं करता तो इस लोकमें भी सुख नहीं पाता और परलोकमें भी। जो अपना ही स्वार्थ सिद्ध करना चाहता है, अपना ही आराम चाहता है, उसका संसारमें भी आदर नहीं होता और पारमार्थिक उन्नति भी नहीं होती। जो अपने स्वार्थ और अभिमानका त्याग करके दूसरोंके हितके लिये काम करता है, वह संसारमें भी अच्छा माना जाता है। परमार्थ भी उसका शुद्ध हो जाता है। वह लोक और परलोक दोनों जगह सुख पाता है।

कुछ लोगोंमें यह धारणा है कि हम आध्यात्मिक उन्नति करेंगे तो व्यवहार ठीक नहीं होगा और संसारका व्यवहार ठीक करेंगे तो परमार्थ सिद्ध नहीं होगा। यह धारणा सही नहीं है। गीतामें इन दोनोंका समन्वय है, अच्छा बर्ताव करो तो अपना लोक-परलोक दोनों सुधर जायेंगे। व्यवहार भी अच्छा होगा और परमार्थ भी अच्छा होगा। व्यवहारमें ही परमार्थकी कला सीख लो। जैसे—एक उदाहरण बतायें। कोई दयालु जज होता है तो वह न्याय नहीं कर सकता और न्याय पूरा-का-पूरा ठीक करता है तो दया नहीं कर सकता। दया करे तो रियायत करनी पड़े, तो न्याय नहीं कर सकता और न्याय ठीक-ठीक करे तो दया कैसे होगी ? परन्तु भगवान्‌की ऐसी बात है कि भगवान् दयालु भी हैं और न्यायकारी भी हैं। इन दोनोंमें बाधा नहीं लगती, क्योंकि भगवान्‌के कानून ही ऐसे बनाये हुए हैं कि उन कानूनोंमें दया भरी हुई है। जैसे भगवान्‌ने कहा—'अन्तकालमें मनुष्य जिसका स्मरण करता है, उसीके अनुसार गति होती है।'

यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम्।
तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः ॥

(गीता ८।६)

यह कानून है कि जिस-जिस भावका स्मरण करता हुआ मनुष्य जाता है, वह आगे उसी भावसे भावित होता हुआ उसी जन्मको प्राप्त होता है। अन्तकालके चिन्तनके अनुसार गति हो जाती है। "**अन्त मति सो गति।**" यह हुआ भगवान्‌का कानून। भगवान् कहते हैं कि अन्तकालमें मुझे याद करेगा तो मुझे प्राप्त हो जायगा। परमात्माकी प्राप्तिके लिये अन्तकालमें परमात्माका चिन्तन करे परमात्माकी प्राप्ति हो जाय। इसमें दया क्या भरी हुई है कि जितने दामोंमें कुत्तेकी योनि मिले उतने ही दामोंमें परमात्माकी प्राप्ति हो जाय। क्या खर्च हुआ बताओ ? कुत्तेको याद करते हुए मरोगे तो कुत्ता बन जाओगे और परमात्माको याद करते हुए मरोगे तो परमात्माकी प्राप्ति हो जायगी तो इसमें अपने लिये भगवान्‌ने कोई रियायत नहीं की। कानून है, इसका कोई भी पालन कर लो और इस कानूनमें कितनी दया भर दी। जिस चिन्तनसे चौरासी लाख योनि मिलती है, उसी चिन्तनसे भगवत्प्राप्ति हो जाय, सदाके लिये जन्म-मरण मिट जाय। यह कानून है। कानून भी है, दया भी है। इसी तरह व्यवहार ठीक करनेसे परमार्थ भी सुधरता है। व्यवहारका काम ठीक करनेसे परमार्थ नहीं बिगड़ता। झूठ, कपट, बेईमानी, धोखेबाजी करते हो तो उससे परमार्थ बिगड़ता है। लोगोंको इससे लाभ दीखता है, पर लाभ नहीं है।

किसीके साथ कपट करोगे, द्वेष करोगे, चालाकी करोगे, ठगी करोगे तो जैसे कि कहा है—"**हाँडी काठकी चढ़े न दूजी बार।**" काठकी हाँडीको एक बार चूल्हेपर चढ़ा दो, तो दुबारा चढ़ेगी क्या ? ऐसे ही एक बार भले ही ठगी कर लो पर उसके साथ खटपट हो जायगी। व्यवहार भी ठीक नहीं होगा। अतः

अपने स्वार्थका त्याग और दूसरोंके हितकी भावनासे व्यवहार ठीक होगा और व्यवहार ठीक होगा तो परमार्थ भी ठीक होगा। स्वार्थ और अहंकारका त्याग करनेसे काम ठीक होता है। यह बहुत ही लाभकी बात है।

भगवद्गीता व्यवहारमें परमार्थ सिखाती है। गीता पढ़ो। गीताका अध्ययन करो। उसपर विचार करो और उसके अनुसार अपना जीवन बनाओ। देखो कितनी मौज होती है! कितना आनन्द आता है स्वाभाविक ही। गीता बतलाती है कि व्यवहार ठीक तरह करो तो परमार्थ स्वतःसिद्ध हो जायगा। सिद्धान्त यह है कि परमार्थ तो स्वतःसिद्ध है। बिगड़ा तो व्यवहार ही है और कुछ बिगड़ा ही नहीं है। न जीवात्मा बिगड़ा, न परमात्मा बिगड़ा, न कल्याण बिगड़ा है। बिगड़ा है केवल व्यवहार। व्यवहार शुद्ध कर लो। सब काम सिद्ध हो जायगा।

नारायण ! नारायण ! नारायण !

क्रोधपर विजय कैसे हो ?

जैसे आप हिसाब सीखते हो तो उस हिसाबका गुर सीख लेते हो तो वह हिसाब सुगमतासे हो जाता है। ऐसे ही हरेक प्रश्नका एक गुर होता है, उसको आपलोग सीख लो तो प्रश्नका उत्तर स्वतः आ जायगा।

प्रश्न आया है कि हम क्रोधपर विजय कैसे पावें ? तो क्रोध पैदा किससे होता है ? गीताने कहा—'कामसे ही क्रोध पैदा होता है'—*''कामात्क्रोधोऽभिजायते।''* (२। ६२) वह काम (कामना) क्या है ? मनुष्यने यह समझ रखा है कि 'धन, सम्पत्ति, वैभव आदिकी कामना होती है'—ये भी सब कामना ही है, पर मूल—असली कामना क्या है ? 'ऐसा होना चाहिये और ऐसा नहीं होना चाहिये'—यह जो भीतरकी भावना है, इसका नाम कामना है।

आप पहले यह पकड़ लेते हो कि 'ऐसा होना चाहिये' और वह नहीं होगा तो क्रोध आ जायगा, कोई वैसा नहीं करेगा तो क्रोध आ जायगा। 'ऐसा नहीं होना चाहिये' और कोई वैसा करेगा या उससे विपरीत कहेगा तो क्रोध आ जायगा। ऐसा होना चाहिये और ऐसा नहीं होना चाहिये—यही क्रोधका खास कारण है।

ऐसा होना चाहिये और ऐसा नहीं होना चाहिये—इस कामनामें कोई फायदा नहीं है; क्योंकि दुनियामात्र हमसे पूछकर करेगी क्या ? हमारे मनके अनुसार ही करेगी क्या ? आप अपनी

स्त्री, अपने पुत्र, अपने नौकर आदिसे चाहते हैं कि ये हमारा कहना करें तो क्या उनके मन नहीं हैं ? क्या उनकी कोई धारणा नहीं है ? क्या उनकी कोई कामना, चाहना नहीं है ? ऐसा करूँ और ऐसा न करूँ—ऐसा उनके मनमें नहीं है क्या ? अगर उनका मन इससे रहित है, तब तो आप कहें, वैसा वे कर देंगे, पर उनके मनमें भी तो 'ऐसा करूँ और ऐसा न करूँ' ऐसी दो बातें पड़ी हैं तो वे आपकी ही कैसे मान लें ? आपकी ही वे मान लें तो फिर आप भी उनकी मान लो। जब आप भी उनकी माननेके लिये तैयार नहीं हैं तो फिर अपनी बात मनवानेका आपको क्या अधिकार है ? इसलिये 'ऐसा होना चाहिये और ऐसा नहीं होना चाहिये'—यह भाव मनमें आ जाय तो 'ये ऐसा ही करें' अपना यह आग्रह छोड़ दो। इस आग्रहमें अपना अभिमान अर्थात् मैं बड़ा हूँ इनको मेरी बात माननी चाहिये—यह बड़प्पनका अभिमान ही खास कारण है और वैसा न करनेसे अभिमान ही क्रोधरूपसे हो जाता है।

अगर आप शान्ति चाहते हो तो अभिमानको मिटाओ; क्योंकि अभिमान सम्पूर्ण आसुरी सम्पत्तिका मूल है। अभिमानरूप बहडियाकी छायामें आसुरी सम्पत्तिरूप कलियुग रहता है। आसुरी सम्पत्तिके क्रोध, लोभ, मोह, मद, ईर्ष्या, दम्भ, पाखण्ड आदि जितने अवगुण हैं, वे सब अभिमानके आश्रित रहते हैं, क्योंकि अभिमान उनका राजा है। उसको आप छोड़ते नहीं तो क्रोध कैसे छूट जायगा ! इसलिये उस अभिमानको छोड़ दो।

छोड़नेका उपाय क्या है ? जो लोग आपका कहना नहीं करते, वे तो आपके अभिमानको दूर करते हैं और जो आपका कहना करते हैं वे आपके अभिमानको पुष्ट करते हैं— यह बात

आपके जँचती है कि नहीं ? जो कहना नहीं करते, वे आपका जितना उपकार करते हैं, जितना हित करते हैं; कहना करनेवाले उतना उपकार, हित नहीं करते। अगर आप अपना हित चाहते हो तो आपके अभिमानमें जितनी टक्कर लगे, उतना ही बढ़िया है अर्थात् वे कहना न करें, उतना ही बढ़िया है। कहना न करनेमें आपके लाभ है, हानि नहीं है। अभिमान पुष्ट करनेके लिये वे बढ़िया हैं, जो कहना करते हैं; परन्तु आपका अभिमान दूर करनेके लिये वे बढ़िया हैं, जो कहना नहीं करते हैं। इसलिये आपको तो उनका उपकार मानना चाहिये कि वास्तवमें हमारा हित इस बातमें है।

यद्यपि वे जानकर हित नहीं करते हैं कि भाई, तुम्हारा अभिमान दूर हो जाय, इसलिये हम आपका कहना नहीं करेंगे फिर भी आपके तो फायदा ही हो रहा है, वे आपके अभिमानको दृढ़ नहीं कर रहे हैं अर्थात् आपका अभिमान दृढ़ नहीं हो रहा है। आप अपना हित चाहते हो कि अहित चाहते हो ? कल्याण चाहते हो कि पतन चाहते हो ? अगर आप कल्याण चाहते हो तो कल्याण आपका निरभिमान होनेसे है और निरभिमान आप तभी होंगे, जब आपका कहना कोई नहीं मानेगा। अगर कहना मानता रहेगा तो आपका कहना सब जगह डटा रहेगा और यही अभिमान है, यही आसुरी सम्पत्ति है—***"दम्भो दर्पोऽभिमानश्च क्रोधः"*** (१६।४) तो जो आपका कहना नहीं मानते, वे आपपर बड़ी भारी कृपा कर रहे हैं। आपकी आसुरी सम्पत्ति हटाकर आपमें दैवी सम्पत्ति ला रहे हैं।

अब प्रश्न आया है कि कहना नहीं माननेसे तो बालक उद्दण्ड हो जायेंगे ? आपका कहना माननेसे आप अभिमानी हो जायँगे

और आपका कहना नहीं मानते तो वे उद्दण्ड हो जायेंगे—इन दोनोंपर गहरा विचार करो। आप नहीं रहोगे तो मनमानी करके उद्दण्ड तो फिर भी हो जायेंगे, परन्तु आपका अभिमान दूर कैसे होगा? उद्दण्ड तो आपके बिना भी हो जायेंगे, पर आपका अभिमान तो दूर नहीं होगा। इसलिये आपको अभिमान तो पहले दूर कर ही लेना चाहिये।

दूसरी बात यह है कि आप उनपर रोब नहीं जमाओगे तो आपकी सौम्यावस्था और निरभिमान-अवस्थाका असर उनपर पड़ेगा, जिससे वे उद्दण्ड नहीं होंगे, ठीक हो जायेंगे। आप कह दो कि भाई, ऐसा काम नहीं करना चाहिये फिर भी वे वैसा ही करें तो आप शान्तिसे चुप-चाप रहो। कारण कि वे उद्दण्डता करेंगे तो उनको वैसा फल मिलेगा। फल मिलनेसे उनको चेत होगा, जिससे उनकी उद्दण्डता स्वतः मिटेगी। उनको चेत होकर जो उद्दण्डता मिटेगी, वह आपके कहनेसे नहीं मिटेगी; क्योंकि उनके मनमें तो अपनी बात भरी रहेगी और आपकी बात ऊपरसे कलई-जैसे रहेगी, वह कलई उतर जायगी तो इससे उद्दण्डता कैसे मिटेगी? उसकी उद्दण्डता मिटानेका सही उपाय यही है कि आप अपने अभिमानको दूर करो।

मनुष्यको परिवारमें रहना है तो परिवारमें रहना सीख लेना चाहिये। परिवारमें रहनेकी यह विद्या है कि उनका कहना करो, उनके मनके अनुसार चलो। अपना जो कर्त्तव्य है, उसका तो पालन करो और उनकी प्रसन्नता लो।

परिवारमें रहना क्या है? आपके कर्त्तव्यका आपपर दायित्व है। आपका कर्त्तव्य क्या है? स्त्री मानें, न मानें; पुत्र माने, न माने; भाई माने, न माने; माँ-बाप माने, न माने; भौजाई और भतीजे

माने, न माने; आप अपने कर्त्तव्यका ठीक तरह पालन करें। वे अपना कर्त्तव्य पालन करते हैं या नहीं करते, उधर आप देखो ही मत। क्योंकि जब आप उनके कर्त्तव्यको देखते हो कि 'ये उद्दण्ड न हो जायँ।' ऐसे समयमें आप अपने कर्त्तव्यसे च्युत ही हैं, आप अपने कर्त्तव्यसे गिरते हो; क्योंकि आपको दूसरोंका अवगुण देखनेके लिये कर्त्तव्य कहाँ बताया है ? शास्त्रोंमें कहीं भी यह नहीं बताया है कि तुम दूसरोंका अवगुण देखा करो; प्रत्युत यह बताया है कि यह संसार गुण-दोषमय है—

सुनहु तात माया कृत गुन अरु दोष अनेक।
गुन यह उभय न देखिअहिं देखिअ सो अबिबेक॥

(मानस ७।४१)

दूसरोंमें गुण हैं, उनको तो भले ही देखो, पर अवगुण मत देखो। अवगुण देखोगे तो वे अवगुण आपमें आ जायेंगे और अवगुण देखकर उनको उद्दण्डतासे बचानेके लिये क्रोध करते हो तो क्रोधसे आप नहीं बच सकते। इसलिये आप अपना कर्त्तव्य पालन करो। दूसरोंका न कर्त्तव्य देखना है और न अवगुण देखना है। हाँ, लड़का है तो उसको अच्छी शिक्षा देना आपका कर्त्तव्य है, उसको अच्छी बात कहो, इतना तो आपका कर्त्तव्य है, पर वह वैसे ही करे—यह आपका कर्त्तव्य नहीं है। यह तो उसका कर्त्तव्य है। उसको कर्त्तव्य बताना—यह आपका कर्त्तव्य नहीं है। आपका तो सिर्फ इतना ही है कि भाई, ऐसा करना ठीक है, ऐसा करना ठीक नहीं है। अगर वह कहे—'नहीं-नहीं बाबूजी', ऐसे करेंगे, तो कह दो—'अच्छा ऐसे करो' ! 'यह बहुत ही बढ़िया दवाई है'। मैं नहीं कहने योग्य एक बात कह रहा हूँ कि 'इस दवाईका मैं भी सेवन कर रहा हूँ।' आपको

जो दवाई बतायी, यह बहुत बढ़िया दवाई है—आप कहो—'ऐसा करो' और अगर वह कहे नहीं, हम तो ऐसा करेंगे। अच्छा, ठीक है ऐसा करो।

रज्जब रोस न कीजिये कोई कहे क्यूँ ही।
हँसकर उत्तर दीजिये हाँ बाबाजी यूँ ही॥

अन्याय हो, पाप हो तो उसको अपने स्वीकार नहीं करेंगे। अपने तो शास्त्रके अनुसार बात कह दी और वे नहीं मानते तो शास्त्र क्या कहता है ? क्या उनके साथ लड़ाई करो ! या उनपर रोब जमाओ ! आपका तो केवल कहनेका अधिकार है—***"कर्मण्येवाधिकारस्ते"*** (२।४७) और वे ऐसा ही मान लें—यह फल है, आपका अधिकार नहीं है— ***"मा फलेषु कदाचन"*** (२।४७) आपने अपनी बारी निकाल दी, बस। कर्त्तव्य तो आपका कहना ही था, उनसे वैसा करा लेना आपका कर्त्तव्य थोड़ा ही है ! वैसा करे, यह कर्त्तव्य उनका है। अपने तो कर्त्तव्य समझा देना है। उसने कर्त्तव्य-पालन कर लिया तो आपके कल्याणमें कोई बाधा नहीं और वह नहीं करेगा तो उसका नुकसान है, आपके तो नुकसान है नहीं, क्योंकि आपने तो हितकी बात कह दी। यह बहुत मूल्यवान् बात है !

नारायण ! नारायण ! नारायण !

ममता-त्यागसे नित्य सुख

मूलमें ममता छोड़ना चाहते नहीं। यहाँ ही गलती होती है। ममता छूटती नहीं— यह बात नहीं है; आप छोड़ना चाहते नहीं। अब छोड़नेकी चाहना पैदा कैसे हो—यह खास प्रश्न है। इसमें आप ध्यान देकर सुनें और खूब ठण्डे हृदयसे विचार करें कि जिनके साथ आपकी ममता है। सबसे अधिक शरीरके साथ, इसके बाद कुटुम्बी, धन-सम्पत्ति आदिके साथ ममता है, ये ममतावाली चीजें सदा साथ रहेंगी क्या ? जैसे आप पहले किसी शरीरमें थे, तो उस समय वे शरीर, कुटुम्बी आदि अपने दीखते थे, पर आज उनकी याद भी नहीं है। तो आज जिनमें आप ममता कर रहे हो, ये चीजें मरनेके बाद यादतक नहीं रहेंगी, क्योंकि ये वस्तुएँ तो छूटेंगी ही। वस्तुएँ तो छूटेंगी, परन्तु उनमें आपका जो राग है, ममता है—यह मरनेके बाद भी आपके साथ रहेगा। इसलिये यह ममता सिवाय जन्म-मरण, दुःख देनेके कुछ लाभ देनेवाली नहीं है।

पदार्थ छूटेंगे, ममतावाली वस्तुएँ छूट जायेंगी, परन्तु ममता भीतर बनी रहेगी। आगे चलकर वही ममता, आसक्ति और कामना पैदा करके बन्धन-ही-बन्धनमें डालेगी इसके सिवाय कुछ नहीं। जब छूटनेवाली वस्तुओंसे ही ममता छोड़नी है तो इसमें जोर क्या आवे ? जरूर छूटनेवाली वस्तुओंकी ममता छोड़नेसे निहाल हो जाओगे, मुक्त हो जाओगे। ममता रहते हुए मौत आवेगी तो भी

****

वस्तुओंसे सम्बन्ध-विच्छेद होगा और त्याग करनेसे भी वस्तुओंसे सम्बन्ध-विच्छेद होगा। परन्तु मौतमें पराधीनता है और त्यागमें स्वाधीनता है। मौतमें अशान्ति है और त्यागमें शान्ति है। मौतमें बाहरसे सम्बन्ध छूट जाता है, पर भीतर ममता-आसक्ति रहनेसे महान् दुःख होता है और त्यागमें भीतरसे सम्बन्ध छूट जाता है तो बाहरसे सम्बन्ध छूटनेपर भी हानि नहीं होती, प्रत्युत महान् आनन्द होता है।

मेरी तो एक ही प्रार्थना है कि आप इन बातोंपर दलील दो, सुनो और विचार करो। ममता रखनेसे हानि-ही-हानि है और ममता छूटनेसे आपके किसी तरहकी हानि नहीं होगी, दुःख नहीं होगा और सुखमें कमी नहीं आयेगी। जैसे, इस मकानको आप सब भाई अपना नहीं मानते तो क्या इसमें बैठनेका सुख आपको नहीं मिलता है ? क्या यहाँके प्रकाशका सुख हमारेको नहीं मिलता है ? यहाँ पंखे चलते हैं, इनसे हमारेको सुख नहीं मिलता है क्या ? यहाँ माइकपर बोलते हैं, सुनते हैं तो इससे हमारेको सुख नहीं मिलता है क्या ? तात्पर्य यह हुआ कि अपनापन छूटने-पर भी सुख मिलना छूटेगा नहीं ! अपनी ये चीजें नहीं हैं और सुख ले रहे हैं तो सुख लेनेपर भी हम निर्लेप रहेंगे अर्थात् यहाँसे चल दें, पंखा टूट जाय, बिजली जल जाय तो अपने कोई चिन्ता नहीं होगी, फर्क क्या है ? ममता नहीं है। जिसके ममता होगी उसके चिन्ता लग जायगी, खलबली मच जायगी। खलबली मचानेके और आगे जन्म देनेके सिवाय ममतासे कोई-सा भी फायदा नहीं है और नुकसान कोई-सा भी बाकी नहीं है। यह बनिया (वैश्य) जाति बड़ी स्वार्थी होती है। यह नुकसानके तो नजदीक नहीं जाती और नफा इनको अच्छा लगता ही है। ममता

छोड़नेसे नुकसान कुछ नहीं है और रखनेसे सभी नुकसान है, फायदा कोई-सा नहीं। क्योंकि पहले ये चीजें थीं नहीं और आगे ये रहेंगी नहीं। इनमें झूठी ममता कर लेते हैं तो बार-बार दुःख पाना पड़ेगा। इस बातको आप समझो और शंका हो तो अभी पूछो !

आप जिसको अपना मानते हो; कुटुम्बको, धनको, घरको, शरीरको अपना मानते हो कि ये मेरे हैं। तो क्या ये पहले मेरे थे ? क्या फिर अपने रहेंगे ? अपने थे नहीं और रहेंगे नहीं। दूसरी बात, आप जिनमें ममता रखते हो, उनको बदल सकते हो क्या ? 'छोरा मेरा है' तो उसको भी अपनी आज्ञाके अनुसार चला सकते हो क्या ? अपने शरीरको भी चाहे जैसा स्वस्थ रख सकते हैं क्या ? कम-से-कम उसको मरने तो दोगे ही नहीं ? धन आपके पास है, उसको रख लोगे ? है हाथकी बात ? शरीर बीमार भी हो जायगा, मर भी जायगा, छोरा भी नहीं मानेगा। धन भी चला जायगा। ममतावाली वस्तुओंको रखनेकी ताकत किसीकी हो तो बोलो ! तात्पर्य यह हुआ कि यह पहले थी नहीं आगे रहेगी नहीं और अभी भी उसके ऊपर आपका आधिपत्य चलता नहीं। उसके परिवर्तन करनेमें आप समर्थ नहीं। अनुकूल बनानेमें समर्थ नहीं, रखनेमें समर्थ नहीं। पहले भी अपनी थी नहीं, और छूट जायगी जरूर—यह पक्की बात है।

हर एक बातमें सन्देह होता है। आप ऐसा करें। ऐसा हो भी जाय और न भी हो। अमुक जगह जाना है, अमुक आदमीसे मिलना है, तो क्या मिल लोगे ? मिल भी सकते हैं और नहीं भी। बेटेका ब्याह कर दिया तो पोता जन्मेगा इसका पता नहीं ! हो भी सकता है और नहीं भी हो सकता है। इस प्रकार हर एक काममें

होगा और नहीं भी होगा—ऐसा होता है; पर एक दिन मरना होगा और नहीं भी होगा—ऐसा विकल्प है क्या ? हो भी सकता है और नहीं भी, मरे चाहे, न भी मरे—ऐसा हो सकता है क्या ? जब मरना जरूरी है तो मरनेपर ममतावाली सब चीजें छूटेंगी तो अपनापन (ममता) पहले छोड़ दो, तो निहाल हो जाओगे। अन्तमें छूटेगी तो सही ! क्यों माजनो (इज्जत) गुमाओ अपनी। बेइज्जतीके सिवाय क्या मिलेगा ?

आप कहोगे कि ममताके बिना कुटुम्बका पालन कैसे होगा ? ममताके बिना पालन ज्यादा होता है और बढ़िया होता है। एक बात याद आ गयी। वह साधु हो चाहे, ब्राह्मण हो, आपका हित ममता रखनेवाला ज्यादा कर सकता है या ममता न रखनेवाला ज्यादा कर सकता है—ठण्डे हृदयसे आप सोचें। आपको चेला बना ले कि यह मेरा चेला है और एक चेला न बनाकर आपको बात कहे तो ममतावाला ज्यादा लाभ देगा कि बिना ममतावाला। यह आप सोच लो आपके अकलमें आती होगी।

स्वार्थवाला सच्ची बात कहेगा कि बिना स्वार्थवाला ? ओर सुधार किस बातसे होगा। आप भी समझते हो कि आपका हित सम्बन्ध जोड़नेमें है कि सम्बन्ध तोड़नेमें। ममता रखनेमें सिवाय हानिके कुछ नहीं है और छोड़नेमें सिवाय लाभके कुछ नहीं है। इन बातोंपर विचार करो।

नारायण ! नारायण ! नारायण !

भय और आशाका त्याग

प्रश्न—साधन, भजन, सत्संग करते हैं फिर भी संसारके प्रवाहका असर क्यों पड़ जाता है ?

उत्तर—देखो भैया ! मैं एक बात कहता हूँ उसकी तरफ ध्यान दें। संसारका प्रभाव किसपर पड़ता है ? गहरा विचार करना। संसारका प्रभाव संसारपर ही पड़ता है। स्वरूपपर संसारका प्रभाव नहीं पड़ता। पहले प्रभाव पड़ा और अभी प्रभाव नहीं रहा। यह ज्ञान है कि नहीं ? इसका उत्तर दो।

प्रश्न—एक बात मनमें आती है कि ये सत्संगमें तो जँच जाता है पीछे नहीं रहता।

उत्तर—पीछे मत रहो। सत्संगमें जँच गयी है न। तो पीछे रहना तुम देखना चाहते हो, यही बहुत बड़ी गलती है। उसका सुधार कर लो अभी। सुधार यह है कि यह व्यवहारमें नहीं रहता अर्थात् अन्तःकरणमें नहीं रहता और अन्तःकरणमें वृत्तियाँ तो व्यवहारके अनुसार होंगी। अगर वैसे वृत्तियाँ न हों तो व्यवहार कैसे होगा ? भोजन ही कैसे होगा ? बोलना भी कैसे होगा ? चलना भी कैसे होगा ? कुछ भी बोलना न हो तो कैसे होगा ? जैसा व्यवहार होगा वैसी वृत्तियाँ होंगी, पर व्यवहार और एकान्त दोनोंका ज्ञान किसीको होता है कि नहीं होता है ? दोनोंका ज्ञान जिसको होता है उसके ज्ञानमें व्यवहार और एकान्त है। इस बातको समझ लो तो अभी निहाल हो जाओ।

मानो व्यवहार और व्यवहाररहित अक्रिय अवस्था। अक्रिय और सक्रिय—ये दोनों अवस्थाएँ हैं। दोनों ही प्रवृत्ति हैं। अक्रिय भी प्रवृत्ति है और सक्रिय भी प्रवृत्ति है। ये तो तुमने सुना ही होगा कि सक्रिय प्रवृत्ति और अक्रिय प्रवृत्ति नहीं है, परन्तु अक्रिय भी प्रवृत्ति है और सक्रिय भी प्रवृत्ति है। अक्रिय और सक्रिय जिस प्रकाशमें प्रकाशित होते हैं उस प्रकाशमें प्रवृत्ति नहीं है। वह प्रकाश एकान्तमें बैठे हुए साफ दीखता है, व्यवहार करते हुए नहीं दीखता है। तो न दीखनेपर भी व्यवहारमें प्रवृत्तिका ज्ञान किसको हो रहा है ? प्रवृत्ति भी तो जाननेमें आती है। आती है न ? तो जाननापन तो रहता है कि नहीं ? केवल जानना है उसमें प्रवृत्ति-निवृत्ति दोनों नहीं हैं। बड़ी सीधी बात है, बहुत ही सरल बात है कि प्रवृत्ति और निवृत्ति दोनों जिससे प्रकाशित होते हैं, उसमें प्रवृत्ति-निवृत्ति कुछ नहीं हैं। न प्रवृत्ति है न निवृत्ति है। समझमें आ गया न ? तो इसमें तुम डटे रहो। वृत्तियोंका एक रूप देखना छोड़ दो आजसे। वृत्तियाँ एक रूप बनी रहें। ये आज तुम छोड़ दो मेरे कहनेसे। ये जबतक पकड़े रहोगे, तबतक तुम्हें सन्तोष नहीं होगा और ये आज ही छोड़ दो। अभी-अभी। व्यवहारमें कैसे ही रहो। क्योंकि वास्तवमें नित्य रहनेवाली चीज तो प्रवृत्ति और निवृत्ति दोनोंका प्रकाशक है। तो निवृत्तिको क्यों इतना महत्त्व देते हो। वास्तविक तो प्रकाश है। प्रवृत्ति और निवृत्ति दोनों जिस प्रकाशसे प्रकाशित होते हैं, वह प्रकाश वास्तविक है। प्रवृत्ति और निवृत्ति दोनों अवास्तविक हैं। प्रवृत्ति और निवृत्ति दोनों सापेक्ष हैं। प्रवृत्तिकी दृष्टिसे निवृत्ति है और निवृत्तिकी दृष्टिसे प्रवृत्ति है। वास्तवमें जो प्रकाश है उसमें न निवृत्ति है न प्रवृत्ति है। ठीक है न यह ? तो इसमें तुम्हारी स्थिति है। मेरे कहनेसे मान लो और

यह जो वहम है कि प्रवृत्ति जबतक रहती है और बीचमें जो असर पड़ता है, तबतक हम तो ठीक नहीं हुए, यह वहम छोड़ दो।

ध्यान देना इस बातपर। किसके द्वारा छूटता है ? कि निवृत्ति आयी, प्रवृत्ति गयी। निवृत्ति गयी, प्रवृत्ति आयी। कहाँ गयी, कहाँ आयी बताओ। प्रवृत्ति-निवृत्तिका अभाव हुआ कि नहीं ? इनका अभाव हुआ तो 'द्वारा' की जरूरत क्या ? एक ऐसा आग्रह छोड़ दो। किसके द्वारा कि तुम्हारे खुदके द्वारा। 'ऐसी वृत्ति निरन्तर रहे' यह आग्रह छोड़ दो। इसमें हानि नहीं होगी। बहुत साफ है इसमें सन्देह नहीं है। प्रवृत्ति और निवृत्ति दोनों प्रकाशित होती हैं स्वतः और ये होती रहें। अपने कोई मतलब नहीं है। दुनियामात्रमें प्रवृत्ति और निवृत्ति होती है कि नहीं ? जागृतमें काम करते हैं। नींदमें काम नहीं करते। दीखता है न। उससे तुम्हारे क्या फर्क पड़ता है ? दुनियामें जो प्रवृत्ति होती है उससे तुम्हारेमें फर्क पड़ता है क्या ? तुम्हारे प्रकाशमें जो स्वयं प्रकाशस्वरूप है उसमें फर्क नहीं पड़ता है न। तो इसकी चिन्ता क्यों करते हो ? ये जो संसारकी प्रवृत्ति-निवृत्ति हैं वही तुम्हारे शरीरकी प्रवृत्ति-निवृत्ति है। दोनों बिलकुल एक धातुकी हैं।

प्रश्न—संसारके प्रवाहमें बह जाते हैं, जिससे सन्तोष नहीं होता।

उत्तर—यह तो गलती करते हो। सन्तोष क्यों नहीं होता है ? इसका कारण है कि आप समझते हैं कि अन्तःकरण निर्विकार रहे—यह आपने पकड़ लिया। अन्तःकरण निर्विकार नहीं होता—यह पकड़ छोड़ दो। अन्तःकरण निर्विकार रहना चाहिये—यह छोड़ दो। निर्विकार कैसे रहेंगे, जब यह कार्य है प्रकृतिका ? यह निर्विकार कैसे रहेगा ? इसमें तो विकार होगा।

प्रश्न—महाराजजी ! एक बात कहूँ, आप कहते हैं न कि ये छोड़ दो। तो एक भय-सा लगता है। ऐसा विचार आता है कि छोड़नेसे कहीं मेरा पतन न हो जाय।

उत्तर—इसीलिये मैंने बार-बार कहा कि मेरे कहनेसे छोड़ दो। यह क्यों कहा ? क्योंकि भय है तुम्हें। तुम्हारे भयका असर है मेरेपर। तुम भयभीत हो रहे हो। इसलिये कहता हूँ तुम डरो मत। जबतक यह पकड़ है, तबतक वास्तविक स्थिति नहीं होगी। वास्तविक स्थितिमें यह पकड़ ही बाधक है और कोई बाधक नहीं है। प्रकाशमें पतन होता ही नहीं। प्रवृत्ति-निवृत्ति दोनोंमें प्रकाश समान रहता है। ये बताओ उसमें फर्क पड़ता है क्या ? उसमें फर्क नहीं पड़ता तो उसका पतन कैसे हो जायगा ? तुम मानते हो अन्तःकरणमें निर्विकारता आ जाय। अगर आ जाय तो—

प्रकाशं च प्रवृत्तिं च मोहमेव च पाण्डव।
न द्वेष्टि संप्रवृत्तानि न निवृत्तानि काङ्क्षति॥

(गीता १४। २२)

ये कहना कैसे बनता ? प्रकाश, प्रवृत्ति और मोह अगर होता, तो ***"न द्वेष्टि संप्रवृत्तानि न निवृत्तानि काङ्क्षति"*** कैसे कहते ?

प्रश्न—यह तो महाराजजी ! उन महापुरुषोंकी बात है जिनको साक्षात्कार हो गया।

उत्तर—वे महापुरुष हम ही हैं। वे महापुरुष अलग नहीं हैं। हम ही महापुरुष हैं। प्रकाशका नाम ही महापुरुष है। डरो मत इसमें। बिलकुल डर नहीं। ये जो सामान्य प्रकाश है, इस स्थितिवालेको ही महापुरुष कहते हैं। महापुरुष कहो चाहे ब्रह्म

कहो। उस सामान्य प्रकाशमें क्या फर्क पड़ता है ? तो सामान्य ब्रह्म है वह एक है। एक तो भय छोड़ दो और एक आगे कुछ विलक्षणता होगी, इस आशाको छोड़ दो। ये दो छोड़ दो। ये दो ही बाधक हैं असली।

निषिद्ध आचरणकी इच्छा हो जाती है। तो निषिद्ध आचरण छूट जायगा। यह सुनकर डर लगता है न। तो छोड़ते डर लगता है इससे सिद्ध होता है कि निषिद्ध आचरणको आपने महत्त्व दिया है। और महत्त्व देकर छोड़ते हैं तो कैसे छूटेगा, उसका आदर आपने कर दिया। उपेक्षा करो। एक करना, एक न करना दो चीज हुई और एक उपेक्षा तीसरी चीज हुई। क्रिया करनेमें तो विधि करना है, निषिद्ध नहीं करना है। परन्तु भीतरमें विधि और निषेध दोनोंसे उदासीन रहो। क्योंकि विधि और निषेध दोनों दीखते हैं किसी प्रकाशमें। उस प्रकाशका सम्बन्ध न विधिके साथ है और न निषेधके साथ है। विधिका सम्बन्ध निषेधके साथ है। निषेधकी निवृत्ति करनेके लिये विधि है। विधि रखनेके लिये विधि नहीं है। **इसलिये विधि-निषेध, भय और आशा—ये दोनों छोड़ दो।** बात खयालमें आयी कि नहीं ? मेरी बात समझमें आयी कि नहीं ? विधि और निषेधमें विधिका लोभ है और निषेधका भय है। ये भय और लोभ जबतक रहेंगे, तबतक आपकी स्वरूपमें स्थिति नहीं होगी। इसलिये भय और लोभकी बेपरवाही कर दो। ये छूट जायेंगे। बेपरवाही करो केवल बेपरवाही। आ गया भय तो आ गया। लोभ हो गया तो हो गया। आपकी अवस्थामें कहता हूँ। हर एकके लिये मैं नहीं कहता हूँ। हर एक बात तो समझेगा नहीं, उलटा असर हो जायगा और आपके उलटा असर नहीं होगा, नहीं होगा, नहीं होगा। क्योंकि ये जब समझमें आ गयी कि विधि

और निषेध—ये करना चाहिये और ये नहीं करना चाहिये, ये दोनों होते हैं और मिटते हैं, आते हैं और जाते हैं और आने-जानेवालोंकी रहनेवालेपर कोई जिम्मेवारी नहीं है, रहनेवालेपर कोई असर नहीं है, रहनेवालेमें कुछ बनता-बिगड़ता नहीं है, न निषेधसे बनता है, न विधिसे बनता है और न निषेधसे बिगड़ता है, न विधिसे बिगड़ता है, उसका बनता बिगड़ता है ही नहीं, तो आपपर असर कैसे पड़ेगा ?

उदासीनवदासीनो गुणैर्यो न विचाल्यते।
गुणा वर्तन्त इत्येव योऽवतिष्ठति नेङ्गते॥

(गीता १४।२३)

वह विचलित होता ही नहीं है। मानो ज्यों-का-त्यों रहता है यह अर्थ हुआ इसका। भय और आशा ये दोनों छोड़ो। भय और आशामें संसारमात्र बँधा है। किसी प्रकारका न तो भय हो और न किसी प्रकारकी आशा हो। जितना चुप रह सको, चुप रहो। और हे नाथ ! मेरेसे नहीं छूटती कहते रहो। कह सकते हो कि नहीं ? जितना मिनट चुप रह सको चुप रह जाओ। इस शरणागतिमें और चुप रहनेमें बड़ी भारी ताकत है। तो आप निर्बलोंको बल आ जायगा और वह कार्य हो जायगा। आपमें तो आ जायगा बल और काम हो जायगा सिद्ध। आपमें बल आयेगा निर्विकार रहनेसे और सिद्ध होगा शरण होनेसे। चुप होनेसे शक्ति आती है।

यह बात अनुभवसिद्ध है कि बोलते-बोलते बोलना बन्द हो जायगा। पड़े रहो बोलनेकी शक्ति आ जायगी। शक्ति स्वतः आती है निष्क्रिय होनेसे और सक्रिय होनेसे शक्ति नष्ट होती है। जितने भोग-संग्रहके लिये काम करते हैं उनमें थकावट होती है।

****

नींद लेनेसे थकावट दूर हो जाती है और शक्ति आती है। निष्क्रिय होनेसे करनेकी शक्ति आती है यह तो अनुभव है न ? इसलिये निष्क्रिय रहनेसे शक्ति आ जायेगी। और हे नाथ ! ऐसा कहनेसे काम सिद्ध हो जायेगा। यह रामबाण उपाय है। इसमें सन्देह हो तो बोलो। तो शरण होकर निःसन्देह हो जाओ। यह तुम्हारा असली इलाज है। इस अवस्थामें चुप होनेमें परिश्रम नहीं करना है। कोई क्रिया हो गयी तो हो गयी, नहीं हुई तो नहीं हुई। अपने मतलब नहीं। अपनी तरफसे कोई क्रिया न तो करो और न ही ना करो। दोनोंसे उदासीन रहो। क्रिया हो तो होती रहे। इस तरह तत्त्वज्ञ जीवन्मुक्त महापुरुष जिसको कहते हैं उसकी अभी-अभी सिद्धि हो गयी।

राम ! राम ! राम !

══ ★ ══